Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सारिका

कहानियां और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : २४; अंक : ३६८, १-१५ नवंबर, १९८४

■ उपन्यास अंश

27. मानसरोवर: गोविंद मिश्र

## अन्य आकर्षण

24. तुलसीदास चंदन घिसैं: हरिशंकर परसाई
31. मथुरादास की डायरी: मथुरादास
54. देहरादून रे देहरादून: रवींद्रनाथ त्यागी
67. भरतमुनि के वंशधर: सूत्रधार

## लघु रचनाएं

10. गजल : अवधेश कुमार
16. आदमी : धीरेंद्र अस्थाना
23. तकदीर : फजल इमाम मलिक
28. शेर और राहगीर: गंभीरसिंह पालनी
30. मनस्थिति : सुखोमिलिस्की
37. समाज साहित्यकारों से क्या चाहता है : रामविलास शर्मा
48. उलटफेर : नीलम कुलश्रेष्ठ
52. संतोष : सविता चिंचालकर
53. गजल : रामदरश मिश्र
56. जीवन साथी : कृष्णा बाछल
63. तीसरा दौर : अशफ़ाक अहमद
66. गजल : सीतेश आलोक

## विशेष आयोजन

39. पीढ़ियां : आमने-सामने : भीष्म साहनी, कर्णसिंह चौहान, नमिता सिंह और रमेश उपाध्याय की समकालीन कहानी पर बहस

## कहानियां

9. दर्पण: अमरकांत
14. सांझ ढले: कर्तारसिंह दुग्गल
17. रामधन भाई: सच्चिदानंद धूमकेतु
33. खंडहर पर मंडराती चीलें: सावित्री परमार
47. बहती हुई कोख: प्रियंवद
59. मौत एक लहर की: निर्मल कुमार
64. कुचरने दो कागा को: विकासकुमार झा

## स्थायी-स्तंभ

6. आपकी बात
57. तस्वीर बोलती है: राजकिशन नैण
58. और भुलाये न बने
69. पखवारे की पुस्तकें
73. हलचल

सहायक संपादक
अवधनारायण मुद्गल
उप-संपादक
रमेश बत्तरा
सुरेश उनियाल
बलराम
महेश दर्पण
सज्जाकार
सुमीता

■ आवरण पारदर्शी : पवन महेंद्रू

संपादकीय पता : सारिका, 10, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# आपकी बात

वर्ष : २४; अंक : ३६४ एवं ३६५
१–१५ और १६–३० सितंबर, १९८४
लोक-कथा विशेषांक : एक व दो

## अनूठा प्रयास

लोककथाओं को एक जगह संकलित करने का एक अनूठा प्रयास **सारिका** ने किया. देश-विदेश की लोककथाओं में से जो जानी-अनजानी, सुनी-अनसुनी थीं पढ़ने को मिलीं.

● **डा. नरेश चंद्र, इंदौर**

## हम जाल काटबि लोई

**लोक-कथा विशेषांकः एक** बहुत पसंद आया. यों तो सभी कहानियां अच्छी लगीं मगर यश सरोज की **'गढ़ी की आवाज'** ने अधिक प्रभावित किया, काश यह कहानी न होकर सच होता, काश, पंजाब में निरीहों का खून बहाने वालों को कोई बता सकता कि नाराज होकर वे अपने ही भाइयों को कत्ल कर रहे हैं, जिनके साथ खेलते-खाते उनका बचपन गुजरा है.

अमरकांत द्वारा प्रस्तुत **'चिड़िया'** कहानी बचपन में सुनी थी और तब से कितनों को सुना चुका हूं. प्रसन्नता की बात है कि अमरकांत ने उसे उसी रूप में रखा है जिस रूप में मैंने अपने बचपन में सुनी थी. यह कहानी कई बार कई पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई है मगर भाषा को आधुनिक बनाने के चक्कर में पड़कर उसके प्रस्तुत-कर्ताओं ने उसकी आत्मा को नष्ट कर दिया था. मगर अमरकांतजी ने ऐसा नहीं किया. धन्यवाद है उन्हें.

पर इस कहानी में एक भूल रह गई है, जिसे मैं सुधारना चाहता हूं. चिड़िया जब चूहे के पास पहुंची, तो चूहा कुछ कुतरने में व्यस्त था और उसने चिड़िया को झिड़क दिया था तथा अपने काम में लगा रहा था. निराश चिड़िया, सबसे हारकर किस्मत को रोती हुई लौट रही थी तभी उसकी नजर एक बिल्ली पर पड़ी, जो भूखी थी और शिकार की तलाश में भटक रही थी. चिड़िया ने उससे पूछा—"मौसी, चूहा खाओगी?" चूहे का नाम सुनते ही बिल्ली के मुंह से पानी टपकने लगा था. वह तुरंत तैयार हो गई थी. चिड़िया बिल्ली को रास्ता दिखाते हुए चूहे के निकट ले गयी. उसे देखते ही चूहे ने, कहा :

"हमरा के मार-वार का मति कोई
हम जाल काटबि लोई."

बाद की सारी कहानी ज्यों की त्यों है.

● **कुमार पार्थसारथी, मुजफ्फरपुर**

## पुरै पोथी, पुरै-पुरै

**'सारिका'** को **लोक-कथा विशेषांक** हेतु बधाई. मुखपृष्ठ पर की लोक कलाकृति से लेकर भीतर की प्रायः सभी रचनाएं बारंबार पठनीय, दर्शनीय एवं स्मरणीय हैं. परंतु चलते-चलते के अंतर्गत आपने जो कुमाऊंनी लोक-कथा दी है उसका वास्तविक रूप यों है—

एक लड़के की सौतेली मां ने उससे काफल मंगाये. बाल्टी भर काफल थे, उन्हें सुखाकर रखने के विचार से उसने काफल सुखाने रखे, बेटे को उनकी देख-रेख की हिदायत देकर मां खेत में चली गयी. दिनभर की धूप में काफल सूखकर कम हो गये. मां ने आधी बाल्टी से कम काफल देखे तो बेटे ने खाये होंगे यह सोचकर उसे इतना मारा कि वह मर ही गया. लेकिन पूरे समय कहता रहा कि मैंने काफल नहीं खाये, इसलिए मरने के बाद वह पक्षी बनकर भी कहता रहा कि "काफल पाक्यो मील नी चाख्यो."

मां की करतूत पर लोगों ने उसको डांटा और काफल कम होने का कारण बताया. मां ने काफल पानी में भिगोया तो फिर से बाल्टी भर गई. तब पश्चातापवश वह भी मर गई. मर-कर वह भी पक्षी बनी और कहने लगी—"पुरै पोथी, पुरै-पुरै" (पूरे बेटा, पूरे-पूरे).

गर्मियों में जब काफल नामक जंगली फल पकता है उन दिनों जंगल में ये दोनों पक्षी बोलते सुनाई देते हैं. पहले बेटा बोलता है फिर मां. उनकी ध्वनि के साथ उक्त वाक्यों और कथा को जोड़ा जाता है.

आप कह सकते हैं कि लोक-कथा मौखिक होने से इसकी घटनाओं में अंतर होता ही है. परंतु प्रस्तुत कथा में काफल बाजार में बेचने की बात इस लोक-कथा को वास्तविकता से कोसों दूर ले जाती है, क्योंकि काफल बेचने की प्रथा पिछले आठ-दस वर्षों से ही पहाड़ी नगरों में शुरू हुई है. उससे पहले ये बेचे नहीं जाते थे. गांवों में आज भी नहीं बेचे जाते. और यह कथा बहुत पुरानी है. तब काफल क्या, दूध बेचने की भी कल्पना नहीं थी.

● **दिवा भट्ट, अल्मोड़ा**

## दादी-नानी की खोज

**लोक-कथा विशेषांक** अपने आप में पूर्ण रहे. रचना भले ही सुनी हुई हो, लेकिन उनमें आचार-संहिता और छिपे ज्ञान स्पष्ट रूप से प्रकट हो रहे थे. कभी-कभी इन रचनाओं को पढ़कर दादी या नानी याद आ जाती थी. सोचता हूं, उनकी कहानियों (उनके द्वारा सुनायी गयी कहानी) में कितनी खोज थी. **'अपनी बात'** के अंतर्गत होना, जानने से अधिक पुरातन है, इसलिए अस्तित्व, ज्ञान से अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है . . . काफी महत्व रखता है.

● **अरुण अभिषेक, पूर्णियां**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## रूढ़ि निर्गमन

गिरिराज किशोर द्वारा प्रस्तुत कथा **मादाम रोजहनी का बयान** मन को छू गयी. सचमुच यदि महिलाओं को पुरानी रूढ़ियों से स्वयं को निकालना है तो उन्हें पहले स्वयं को जानना ही होगा और एक नया साहस तथा आत्म-विश्वास पैदा करना होगा ताकि वे अपने विरुद्ध हो रहे अत्याचारों से टकरा सकें. इसके साथ ही कमलेश भारतीय द्वारा प्रस्तुत कथा 'अंतिम सीख' छोटी-सी, पर सशक्त लगी.

● **महेंद्र ढोटा, सुंदरनगर (हि.प्र.)**

### मादाम रोजहनी का बयान

हैरानी हुई कि गिरिराज किशोर ने **'विद्रोही आत्माएं'** नामक सशक्त कहानी को पुर्नलेखन का बहाना बनाकर किस तरह उसे लोक-कथा (मादाम रोजहनी का बयान) बनाने का प्रयास किया है.

वस्तुतः गिरिराज किशोर ने 'विद्रोही आत्माएं' नामक पुस्तक में से हिंदी अनुवाद को उड़ाकर, उसे भ्रष्ट बनाकर **सारिका** में छपवा लिया है. रिबैलियन स्प्रिरिट्स का अनुवाद श्रीपाद जोशी ने किया है, जो सस्ता साहित्य मंडल से प्रकाशित हुआ है.

मूल कहानी 'रिबैलियन स्प्रिरिट्स' का अनुवाद 'गुलबदन' शीर्षक से कई वर्ष पूर्व शब्दलता पत्रिका में मैंने छपवाया था और सारिका में छपी गिरिराज किशोर की यह रचना मेरे उस अनुवाद से भी काफी भ्रष्ट है. वस्तुतः खलील जिब्रान ने अपनी तमाम रचनाओं में 'मैं' पात्र को प्रमुखता दी है, उसे भी गिरिराज किशोर ने बदल डाला है और एक अच्छी सशक्त कहानी से जिना करने की कोशिश की है.

इसी तरह सत्यपाल सक्सेना ने **तेनालीराम के किस्से नंदन** पत्रिका में नियमित छपने वाले स्तंभ 'तेनाली राम' में से उड़ाकर सारिका में छपवा दिये. खैर उन्होंने इतनी मेहनत तो की ही है.

इस अंक की उपलब्धि है **सतखंडी हवेली का मालिक** नामक रचना. अमृतलाल नागर जी ने लोक-कथा का मूल स्वर बरकरार रखा है.

● **जगदीश कश्यप, गाजियाबाद**

## तस्वीर बोलती है

### सारिका अंक : ३६३

### पुरस्कार विजेताओं को बधाई

● **छाया : रघुराय**

**प्रथम पुरस्कार : ५० रुपये**

**शून्य में पसरी व्यथाएं हैं**
**भग्न वैभव की कथाएं हैं,**
**दिन पुराने याद करती-सी**
**इक नदी है और आदमकद शिलाएं हैं.**

● मदन पांडेय, आधारिक विद्यालय, किछा, जिला-नैनीताल (उ. प्र.)

**द्वितीय पुरस्कार : ३० रुपये**

**दूर-दूर तक**
**सोयी पड़ी थी पहाड़ियां,**
**अचानक टीले करवट बदलने लगे**
**जैसे नींद में उठकर चलने लगे.**

**—सर्वेश्वर दयाल सक्सेना**

● अशोक कुंगवानी, द्वारा अशोक ड्रेस मार्ट, प्रकाश चौक, रीवा-486001

**तृतीय पुरस्कार : २० रुपये**

**कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,**
**कब से रहा है दुश्मन दौरे जहां हमारा.**

● कु. सुधा तिवारी, द्वारा श्री आर. बी. तिवारी, 1-ए, शांति नगर, नयी सड़क लश्कर, ग्वालियर (म. प्र.)

**प्रशंसित शीर्षक**

**न इसमें घास उगती है, न इसमें फूल खिलते हैं,**
**मगर इस सरजमीं में आसमां भी झुक के मिलते हैं.**

**—हफीज जालंधरी**

● श्रीमती मधु मिश्र, गोरखपुर

**समझे कौन नयन की भाषा,**
**पथरीले होंठों के बोल,**
**काश! बन जाता गढ़ कोई संगतराश**
**हमें अनमोल.**

● श्रीमती नीलम सिन्हा, आरा (बिहार)

**आइना बनने से बेहतर है कि तुम पत्थर बनो,**
**जब तराशे जाओगे तो देवता कहलाओगे.**

**—रफीक अंजुम**

● सुधीर कुमार पांडेय, जबलपुर

### संदर्भ: चीनी लोक-कथा

हमें आपकी पत्रिका के लोक-कथा विशेषांक में **रेशम की मां** चीनी लोक-कथा का प्रकाशन देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई. भारत का चीन तथा पूर्वी देशों से बहुत पुराना सांस्कृतिक संबंध है. सम्राट अशोक के समय में भारतीय विद्वानों का चीन तथा और पूर्वी देशों में बौद्ध धर्म का प्रचार करने जाना ही कितना कठिन कार्य रहा होगा. इसी प्रकार चीनी विद्वानों का हमारे देश में आना और हमारी भाषा सीखकर यहां से जाना कितना कठिन होगा.

हम आपसे आशा और अनुरोध करते हैं कि आप पूर्वी भाषा के, खासतौर से चीनी भाषा के साहित्य को अपनी पत्रिका के माध्यम से छापकर हिंदी जगत की ज्यादा से ज्यादा सेवा करेंगे. □

● **कृष्ण कुमार त्रिवेदी 'कोमल,' कानपुर**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अब मिलने लगा है

डीलक्स निरोध

चिकनाईयुक्त

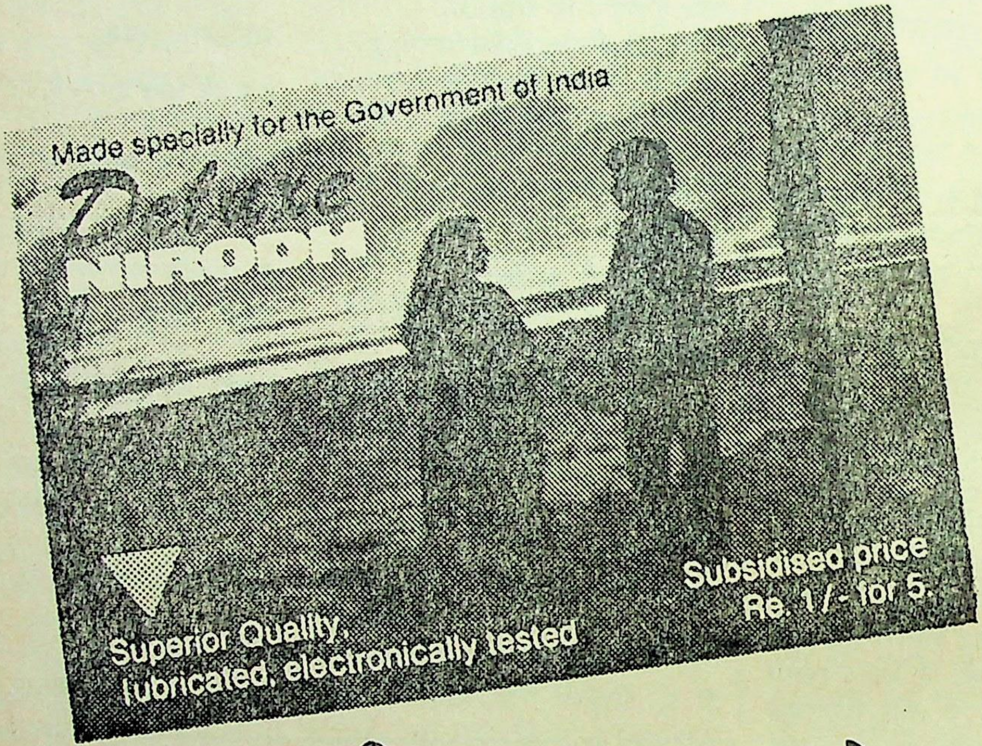


बढ़िया पसन्द वाले दम्पतियों के लिए

1 रु० के 5

*उत्तम कोटि

*इलेक्ट्रानिक तरीकों से परखा गया

सभी बड़े शहरों में बिकता है

davp 84/28




CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

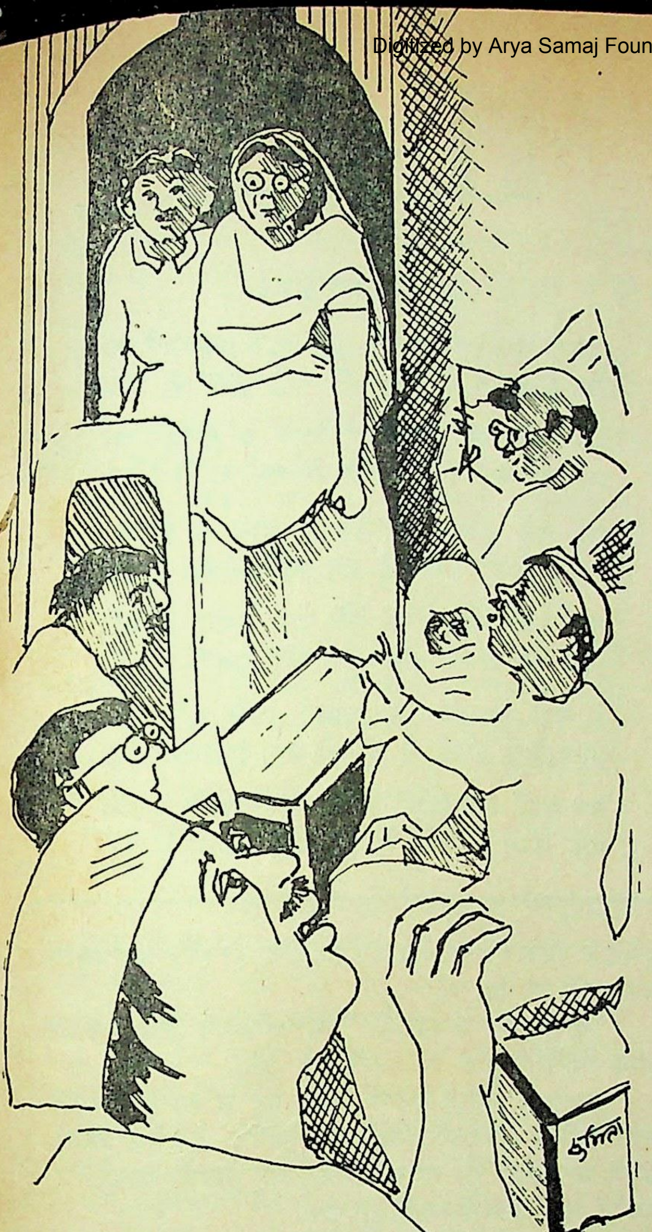

**राजनीति और समाज सेवा एक दूसरे का पर्याय बन गये हैं, पर वह समाज कौन-सा है, जिसकी सेवा हो रही है?**

# दर्पण

## • अमरकांत

**ब**हुत दिनों के बाद आज कुलदीपक 'भारती' का कमरा खुला नजर आ रहा है. जब भारतीजी शहर में होते हैं तो जन-संपर्क का उनका समय सुबह सात बजे से नौ बजे तक रहता है. पर लोग भी खूब हैं, छह बजे से ही जमावड़ा शुरू कर देते हैं. जबकि भारतीजी नौ बजे से पहले कमरे में आते ही नहीं. अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक संघटनों के अध्यक्ष कई विद्यालयों और आश्रमों के संचालक तथा दो फार्मों के स्वामी भारतीजी से अधिक प्रतिष्ठित, प्रभावशाली और तपा-तपाया नेता इस अंचल में कोई है नहीं.

भारतीजी कभी समाजवादी पार्टी यानी विपक्ष के बड़े ही तेज-तर्रार और क्रांतिकारी नेता थे. इसके बाद अचानक वह सत्ता में आ गये. फिर वह विपक्ष में चले गये. कुछ दिन बाद पुनः सत्ता के साथ आ मिले, फिर आसानी से एक बार और विपक्ष में चले गये. और अंत में उन्होंने पके आम की तरह अपनी ऐसी हालत बना ली कि एक बार खोदने से भद से फिर सत्ता की गोद में जा गिरे. और लोगों को विश्वास था कि सत्ता जब अपनी राष्ट्रीय जिम्मेदारियों का ठीक से परिपालन नहीं कर पायेगी तो भारतीजी पुनः सहष विपक्ष में चले जायेंगे. इधर भारतीजी की लोकप्रियता कुछ अधिक ही बढ़ जाने का कारण यह है कि कोटि-कोटि जनता की नब्ज महसूस करने तथा शोषित, गरीब लोगों के आंसू पोंछने के लिए वह एक लंबी पद-यात्रा करके कुछ ही दिन पहले अपने नगर वापस आये हैं.

सचमुच वह एक महान पदयात्रा थी. साथ में दो कारें. असंख्य भक्तगण और आदमी-जन. जहां पहुंचते, लोग दूध-दही, फल-फूल, रुपये-पैसे से स्वागत करते. पर स्वयं भारतीजी चार रोटी, उबली हुई सब्जी, एक गिलास दूध, दो सेब, दो संतरे और अखरोट-किशमिश से अधिक कुछ भी न लेते थे. देश के लिए कष्ट भुगतने की भारतीजी की अपरिसीम क्षमता इस घटना से भी स्पष्ट हो जाती है कि पदयात्रा के दौरान जब एक बार उनके पैर में कांटा चुभ गया और कुछ खून निकल आया तो उनके मुंह से 'उफ' तक नहीं निकली. भारतीजी के अंदर जनतांत्रिक भाई-चारे की भावना भी कूट-कूटकर भरी थी, इसीलिए रात में विश्राम के समय जब भक्तगण उनके थके हुए पैरों को दबाने का आग्रह करते तो वह बार-बार मना करने के बाद ही पराजय स्वीकार करते. पदयात्रा संबंधी ऐसे ही असंख्य प्रसंगों की विस्तारपूर्वक चर्चा करते हुए अखबारों ने उनका काफी गुणगान किया था और भविष्यवाणी भी की थी कि किसी दिन भारतीजी के भाग्य का सितारा काफी बुलंदी पर जाकर जगमगायेगा.

ठीक सवा नौ बजे भारतीजी घर से प्रकट हुए. एक क्षण के लिए वह बरामदे में गये, वहां उपस्थित लोगों को हाथ जोड़कर नमस्कार किया. फिर कमरे के अंदर जाकर बैठ गये. बैठते ही उन्होंने कलाई घड़ी पर नजर डालकर व्यस्ततापूर्वक अगल-बगल तथा पुनः बाहर बरामदे की ओर



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा. इतने में नौकर रामधन उनके सामने छोटी-सी गोल मेज पर हिंदी के कुछ पत्र और पत्रिकाएं रख गया.

"कित्ते लोग हैं बरामदे में?" उन्होंने रामधन से पूछा.

"यही पंद्रह लोग साब."

"सबसे पहले कौन आया था?"

"बख्शीपुर की एक बुढ़िया महरी है. दो बार पहले भी आ चुकी है. . . "

"ठीक है. . . ठीक है. दस मिनट बाद उसे भेजना. सबको बारी-बारी से. . . समझे?"

"ठीक है साब."

इसके बाद रामधन उनकी कलम-पेंसिल, डायरी और टेलीफोन मेज पर रख गया. भारतीजी अंग्रेजी का एक अखबार खोलकर उसमें डुबकी लगाने लगे. वह खद्दर सिल्क का कुर्ता और खद्दर का पाजामा पहने थे. और बड़ी-बड़ी आंखोंवाला उनका चग्घड़ चेहरा इस समय सौम्य-शांत दिखाई दे रहा था. अखबार के पन्ने पलटते समय वह सिर उठाकर उच्चता, पवित्रता और आत्म-विश्वास के मिश्रित भाव से सामने लॉन की ओर देखते. जहां एक फिएट कार खड़ी थी. इस तरह वह बारी-बारी से सभी पत्र-पत्रिकाएं पलट गये.

बरामदे में एक तख्त, टिन की दो कुर्सियां और दो बेंचें रखी हुई थीं. वहां बैठे लोगों की बेचैनी बढ़ गयी थी. हर व्यक्ति के साथ अपनी परेशानी थी और हर व्यक्ति को जल्दी भी थी. कोई तेजी से पैर हिला रहा था, कोई जुम्हाई ले रहा था और कोई बदन को तोड़ रहा था. उनमें सभी ऐसे थे, जो अपने को असहाय समझकर यहां दौड़े आये थे. महरी के लड़के के अलावा वहां दो और नौजवान थे, जो बेकार तो थे ही, ओवर एज भी हो चुके थे. उनमें से एक को व्यवसाय चलाने के लिए ऋण नहीं मिल रहा था और दूसरे को कोई अन्य नौकरी न मिलने पर पत्रकारिता में घुसने के लिए सिफारिश करानी थी. उनमें तीन ऐसे व्यक्ति थे, जिनमें से दो को उनके मकान-मालिक मकान से निकाल चुके थे और उन्हें कोई मकान नहीं मिल रहा था — और तीसरे व्यक्ति के आवास-विकास परिषदवाले मकान पर दूसरे लोग जबरदस्ती काबिज हो चुके थे. वहां तीन-चार बुरकाधारी औरतें भी थीं, जिनके मर्द या लड़के जुआ, बदचलनी आदि के अभियोग में पुलिस द्वारा पकड़ लिये गये थे.

"भेजो," पत्र-पत्रिकाओं से निबटकर भारतीजी ने सिर उठाकर रामधन से कहा.

जल्दी ही साठ-बासठ वर्ष की एक नाटी-सी बुढ़िया लंगड़ाती-सी चाल से कमरे के अंदर दाखिल हुई. उसके पीछे तेइस-चौबीस वर्ष का एक काला, नाटा नौजवान भी जो भीत नजरों से भारतीजी को देख रहा था. बुढ़िया एक मैली-कुचैली साड़ी पहने थी और उसके आंचल को उसने सिर के कुछ आगे खींच लिया था. लड़का बी.ए. करने के बाद भी बेकार घूम रहा था और उसके लिए बुढ़िया पहले भी दो बार आ चुकी थी कि उसे चपरासगीरी भी मिल जाती.

## ग़ज़ल

▣ अवधेश कुमार

दुश्मनों से भी कभी वो कुछ नहीं कहता है पेड़
ऐसा लगता है कि अपने में नहीं रहता है पेड़.

एक गमले में सिमटकर रहने पे मजबूर था
इस शहर में अब भी शायद वो कहीं रहता है पेड़.

इस बड़े होटल के पीछे की गली में है मकां
ये पता बिल्कुल सही है. हां, यहीं रहता है पेड़.

क्या कभी मौसम भी तेरे पास आता है यहां
पूछने पर उसकी बाबत कुछ नहीं कहता है पेड़.

वो फलों के बोझ से लदकर जमीं छूने लगा
आंधियों के जोर से भी जो नहीं झुकता है पेड़.

मेज कुर्सी खिड़कियों कागज में दरवाजों में भी
बाद मरने के जहां में हर कहीं रहता है पेड़.

---

कमरे के अंदर भी एक बैंच थी, पर दोनों ही नीचे चमचमाते पक्के फर्श पर बैठ गये.

"तुम्हारा नाम क्या है?" भारतीजी ने नौजवान की ओर तिरछी दृष्टि से देखते हुए पूछा.

लड़के ने जवाब देने के लिए मुंह खोला ही था कि भारतीजी के ड्राइवर बाबूराम ने कमरे में प्रवेश किया. उसने भारतीजी को सलाम किया. वह पुरानी खाकी पैंट, बुश्शर्ट और चप्पल पहने हुए था.

"अरे तुमने इतनी देर कहां लगा दी, भाई! मालूम है कि शाम को पार्टी है?" भारतीजी ने रूखाई से पूछा.

"गांव से कुछ मेहमान आ गये थे साब."

"सारा सामान इस समय तक आ जाना चाहिए था. फिर जाओ जल्दी, भीतर से लिस्ट और पैसे लेकर ला दो सभी सामान फटाफट."

बुढ़िया और उसका लड़का, दोनों भकुआकर उन्हें देख रहे थे और उनकी बातें सुन रहे थे. पदयात्रा के बाद अपने संपर्कों तथा संबंधों को और व्यापक एवं मजबूत बनाने केलिए भारतीजी ने आज रात में एक दावत का आयोजन किया था, जिसमें नगर के प्रभावशाली रईस, सेठ, वकील, बुद्धिजीवी, कई अफसर तथा विभिन्न राजनीतिक-सामाजिक संघठनों के नेता लोग शामिल होने वाले थे.

पर इधर से ड्राइवर का जाना था कि उधर से दो सफेदपोश व्यक्तियों का आगमन हुआ. वे कमरे में मुस्कराते हुए बेधड़क घुस आये, जैसे रेल के डिब्बे में टी.टी.ई.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आइये...आइये प्रद्युम्नजी." भारतीजी उनके स्वागत में उठ खड़े हुए, उन्होंने दोनों को अपनी बगल में कुर्सियों पर बिठाया.

अधेड़ व्यक्ति ने बैठते ही मजाकिया लहजे में कहा, "इनको तो जानते हैं न? रमेशजी हैं... आपके दर्शन करने के इच्छुक थे. मैं और रमेशजी चौक से ही पदयात्रा करते हुए आ रहे हैं..."

उन्होंने भारतीजी को तिरछी दृष्टि से देखते हुए यह बात कही थी और बात समाप्त होते ही बेतहाशा हंसने लगे. हंसते समय उनका शरीर इस तरह हिलने लगा, जैसे वह किसी लूप लाइन की पैसेंजर ट्रेन में यात्रा कर रहे हों.

"ऐसी भी क्या आफत है?" भारतीजी ने मुस्कराते हुए पूछा.

"अभी से अभ्यास कर रहा हूं..."

अब इसका मतलब जो भी हो, तीनों ने इस पर जोरदार ठहाके लगाये. और जब वे गंभीर हुए तो बातचीत सीधे राजनीति पर आ गयी. प्रद्युम्नजी की सामान्य आवाज भी बड़ी तेज थी, जैसे गला फाड़कर बोल रहे हों, जिससे कान झनझना जाते थे. वह जितना बोलते थे, उससे अधिक हंसते थे, जैसे बड़ी होशियारी की बात कर रहे हों.

"सचमुच आपकी हैदराबादवाली स्पीच मुझे बहुत अच्छी लगी..."

"क्या कहा था मैंने? मुझे तो याद ही नहीं." भारतीजी हल्के-फुल्के ढंग से मुस्कराकर इस तरह बोले, जैसे उन्हें सचमुच अचंभा हो रहा हो.

"अरे, वही चतुर्मुख क्रांतिवाली बात. भाई, मजा आ गया..." चटपटे खाने की वह जिस तरह तारीफ करते हैं, उसी तरह मजा शब्द पर उन्होंने जोर दिया.

भारतीजी सहसा काफी गंभीर हो गये. फिर सिर नीचा करके कुछ सोचते हुए उन्होंने कहा, "हां...ठीक है.. याद आया, भई मैं तो खरी बात कहने का आदी हूं, चाहे किसी को भला लगे या बुरा. ए भाई प्रद्युम्नजी, जब जनता के कल्याण के लिए हम लोग काम करते हैं तो किसी से डरें क्यों?..."

भारतीजी अब ऊंचे स्वर में बोल रहे थे, मानों वह पच्चास हजार की भीड़ के सामने बोल रहे हों. इसके बाद बातचीत जातिवाद, संप्रदायवाद समाप्त करने तथा समाजवाद लाने की जरूरत पर होती हुई इस विषय पर आ गयी कि भारत कैसे विश्व को रास्ता दिखा सकता है. इस संबंध में प्रद्युम्नजी तथा रमेशजी ने भी कुछ बहुत ही मौलिक विचार रखे.

भारतीजी ने घड़ी की तरफ देखा. साढ़े दस बज चुके थे और बाहर क्वार की धूप और तेज हो गयी थी. बुढ़िया अब भी उनकी ओर बीच-बीच में आशापूर्ण दृष्टि से देख लेती थी कि कब उनकी बात खत्म हो और वह अपनी बात रखे, पर उसके चेहरे पर थकान स्पष्ट नजर आ रही थी. लड़का लगातार जम्हाई ले रहा था. बरामदे में कुछ लोगों के पैर और तेजी से हिल रहे थे और कुछ आदमी बरामदे में ही चहलकदमी करने लगे थे.

सहसा प्रद्युम्नजी ने भारतीजी के कान के पास मुंह ले जाकर साथ-साथ आवाज में कहा, "भैया, एक काम है..."

"बताओ... बताओ," भारतीजी ने उत्सुकता प्रदर्शित करते हुए पूछा.

"बस, समझिए एक निजी काम है... अपने लोगों का ही..."

"अरे तो बताओ न... मैं तो हजार लोगों का काम छोड़कर अपने लोगों का काम करता हूं. सभी कर रहे हैं तो हम क्यों न करें." भारतीजी भी धीमी आवाज में भुनभुनाते हुए बोल रहे थे.

"बस, आप ही को ऐसा देख रहा हूं...नहीं तो और जगह तो अपने लोग ही अपने लोगों को काटते हैं. हमारे लोगों में यही तो कमजोरी है कि हममें एका नहीं है..."

जैसे बहुत राज की बात कर रहे हों, इस तरह भारतीजी ने अपने मुंह को प्रद्युम्नजी के कान के पास ले जाकर आंखें मटकाते हुए फुसफुसायी आवाज में कहा, "भैया, मैं मौका नहीं चूकता... चपरासी तक... समझे? बस आज्ञा दीजिये..."

"भैया, ये रमेशजी हैं न... इनके बड़े भाई कुछ संकट में पड़ गये हैं. ये दोनों भाई हीरा हैं... अपने लोगों के लिए हमेशा जान देने को तैयार रहते हैं. बस समय है... खैर. हां, पर आप जानते हैं कि यह ईमानदारी का जमाना नहीं है, इसलिए हमेशा कष्ट में ही रहते हैं...कोई दूसरा उस जगह पर होता तो लाखों पीटकर रख चुका होता. तो उनका एक लड़का है, पढ़ने में कुछ ठीक नहीं है, किसी तरह बी.ए. किया है. बस आगे पढ़ने का नाम ही नहीं ले रहा है. उसी की वजह से इनके बड़े भाई साहब चिंतित रहते हैं... किसी सरकारी दफ्तर में घुस-घुसा जाता... दस-पंद्रह हजार खर्च करने को भी तैयार हैं..."

भारतीजी ने झट से प्रद्युम्नजी के हाथ पर हाथ रखते हुए कहा, "बस? मैं करा दूंगा...समझे भैया, मैं करा दूंगा. यह अपना काम है.. अपने लोग हर जगह हैं. नहीं, नहीं, मैं करा दूंगा... एड-हॉक हो जायेगा, फिर कमीशन में देख लिया जायेगा. लड़के को बायोडाटा के साथ हमारे पास भेज दीजियेगा."

जब वे चले गये तो भारतीजी ने में घड़ी देखने के बाद बुढ़िया और लड़के की ओर दृष्टिपात करते हुए रुखाई से कहा, "अरे, तुम लोग बैठे हो? मैं तो तुमसे कई बार कह चुका हूं कि केवल बी.ए. करने से काम नहीं चलेगा. आगे पढ़ो... किसी चीज की ट्रेनिंग ले लो... वकालत ही पढ़ लो... वकील लोग बड़ा पैसा पीटते हैं..."

"दुहाई हो सरकार की," बुढ़िया ने गिड़गिड़ाते हुए स्वर में हाथ जोड़ते हुए अपील की, "इसका बाप चार साल पहले मर गया, मैंने किसी तरह बर्तन मांजकर इसे पढ़ाया. एक बाबू से कहा था. उन्होंने कहा कि रेलवई में लगवा दूंगा, दस हजार का खर्चा पड़ेगा. माई-बाप, एक-दो हजार की



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात होती तो सामान बेचकर, कर्जा लेकर करती, अब दस हजार कहां से लाऊं? सरकार, आपका रुतबा बढ़े. . . किसी सरकारी दफ्तर में इसे चपरासी लगवा दें. . ."

"एक अर्जी लिखवाकर भेज दो."

"सरकार, पिछली बार आयी थी तो एक अर्जी दे गयी थी. . ."

"अच्छा?" भारतीजी इस तरह बोले, जैसे उन्हें बड़ा अचंभा हो रहा हो. फिर वह सिर झुकाकर कुछ याद करने की कोशिश करने लगे. लेकिन, ठीक इसी समय फिर किसी नवागंतुक ने प्रवेश किया जिसे देखते ही भारती जी बेहद प्रसन्न हो गये, "आइये. . .आइये. . . अहो भाग्य. बहुत दिनों बाद दर्शन दिया. किस दुनिया में रहते हैं आजकल?"

नवागंतुक एक बुजुर्ग सज्जन थे, उम्र साठ से कम न थी, पर शरीर अब भी टांठ था. सांवला रंग, नुकीली नाक, संकीर्ण ललाट, बाल उल्टे झाड़े हुए. वह महीन कीमती धोती, रेशम का कुर्ता और पंप शू पहने थे.

"शहर अब कहां रहता हूं?" बुजुर्ग सज्जन ने बैठकर हंसते हुए कहा, "कभी-कभी आ जाता हूं. . . बस. वकालत अब छोड़ दी है.वकालत तो आप जानते हैं, सरासर जलालत है. आप शहर में रहकर फार्मिंग कराते हैं, मैं गांव में रहकर खेती-बारी करता हूं. . . ट्रैक्टर ले लिया, नलकूप लगा लिया है, आपकी कृपा से दोनों जून के लिए रूखा-सूखा कुछ मिल ही जाता है." फिर मुस्कराकर, "आपकी गति-विधियों की खबर रखता हूं. भई, कमाल कर दिया आपने. भारतीजी कुछ कीजिये. . . आप ही जैसे लोग देश को बचा सकते हैं. आपने इस जिले और राष्ट्र का नाम ऊंचा कर दिया. मैं तो लोगों के बीच में घूमता हूं न. . .जहां जाता हूं, आपकी चर्चा होती है. आपकी धूम मच गयी है. क्या हिंदू, क्या मुसलमान, क्या सिख, क्या ईसाई, सभी आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं. आपके एक इशारे पर लोग जान कुर्बान करने को तैयार हो जायेंगे."

भारतीजी नीचे मुंह करके सज्जनतापूर्वक मुस्कराते हुए बोले, "अरे ऐसा न कहिये. . . और बहुत से बड़े लोग हैं इस देश में."

"अरे, कुछ नहीं. . . सबकी पोल-पट्टी खुल चुकी है. आप आगे बढ़िये तो हमें भी उत्साह आये. मेरे भी खयालात आप ही की तरह हैं. मैं बड़ों-बड़ों की परवाह नहीं करता. . . पर जनता की तकलीफ मुझसे एकदम बरदाश्त नहीं होती. किसी को कष्ट में देखता हूं तो आत्मा तड़पने लगती है. आपने जो शुरुआत की है, उससे देश का भाग्य बदल सकता है, देश अपना पुराना रुतबा पा सकता है. बताइये न, यह देश विश्व का गुरु था कभी. क्या नहीं था यहां? बिजली, ऐटम-बम, राकेट, मिसाइल, विमान, अंतरिक्षयान, सब कुछ था यहां. रामायण, महाभारत, धार्मिक ग्रंथों में यह सब कुछ पढ़ने को मिल जायेगा."

इतना कहकर वह जोर से हंस पड़े. भारतीजी ने भी उनका साथ दिया फिर गंभीर होकर बोले, "रघुनंदनजी, घबराइये नहीं, मैं करूंगा, सब कुछ करूंगा. इसी शहर में बहुत-कुछ किया है, अब पूरे देश के लिए करूंगा. आप लोगों का सहयोग रहा तो वह सब-कुछ होगा जो आप सोचते हैं."

भारतीजी का मुंह और नाक के नथुने उत्साह से फूल आये. इसी समय रामधन चाय-बिस्कुट और पान ले आया. वे लोग चाय पीते हुए बातें करने लगे, उन योजनाओं के बारे में जिनसे देश स्वर्ग बन जायेगा.

बुढ़िया और उसके बेटे के चेहरों पर थकान की लकीरें और गहरी हो गयी थीं.

चाय पीने तथा पान खाने के बाद रघुनंदनजी ने भारतीजी की ओर झुककर अत्यंत धीमे स्वर में कहा, "इधर एक संकट में पड़ गये हैं. . ."

"ऐं. . ." भारतीजी का चेहरा गंभीर हो गया.

"पुलिस बेकार में हमारे पीछे पड़ी है. . ."

"क्यों?"

"कुछ खाना चाहती है. . ."

"आखिर कोई बात भी हो."

दोनों में बहुत ही धीमे-धीमे स्वर में बात हो रही थी. रघुनंदनजी ने कहा, "आप तो जानते ही हैं मेरे लड़के को. ऐसा सीधा लड़का दीया लेकर ढूंढने पर भी नहीं मिलेगा. आप तो उसकी शादी में गये ही थे. किस्मत ही उसकी खराब थी—स्त्री उसे बीमार मिली. पचासों हजार दवा-दारू में निकल गये. उसको लेकर लड़का चौबीसों घंटे परेशान रहता. अपनी बीमारी से खुद परेशान रहती थी वह. एक बार उसने जहर खाने की कोशिश की; पर हमारी वाइफ ने देख लिया तो उसकी जान बची. इसी तरह चल रहा था. एक दिन उसकी हालत बहुत खराब हो गयी. पता नहीं क्या हो गया उसे. हम लोग एक रिश्तेदारी में बाहर गये थे. बेचारी बीमारी से घबरा गयी थी, अपने को अकेला पाया तो फिर कुछ खा लिया. इस बार घर में कोई था भी नहीं. . . हमने लौटकर सब-कुछ देखा तो हम पर वज्र गिर पड़ा. वाइफ और लड़के का तो रोते-रोते बुरा हाल हो गया. पर इधर लगता है कि दुश्मन लोगों ने समधी को कुछ सिखा-पढ़ा दिया है, उसने पुलिस में रिपोर्ट कर दी है. ."

"यह तो बहुत बुरा हुआ. फिर?"

"वाइफ और लड़के को छिपा दिया है और आपके पास आया हूं. दुश्मनों ने. . ."

"कौन दुश्मन?" भारतीजी ने बीच ही में टोका.

"समझ जाइये अपन लागों के कौन दुश्मन हैं? ये लोग हमारी जाति से बहुत जलते हैं, इन लोगों की चले तो हमारी जाति को ही खा जायें, पर भगवान की दया से वहां वे हम लोगों से काफी कम हैं. अब आप ही बताइये, हम आप दहेज के लालची कहे जायेंगे?"

"फिर तो चुनाव में हमारी पोजीशन काफी मजबूत होगी?" भारतीजी ने बीच में टोककर प्रश्न किया.

"अरे खूब. . . आप खड़े तो होइये, वहां 90 फीसदी वोट मैं आपको दिलावाऊंगा. अपने लोगों के सामने वे लोग



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मच्छर हैं. वहां एक-से-एक जबर लोग भी अपने साथ हैं... मौके पर कुछ भी कर सकते हैं. हां, तो मैं कह रहा था कि आप ही की तरह दहेज से मैं घृणा करता हूं... हां, कोई देना चाहे तो मैं रोक तो नहीं सकता? वैसे मैंने काफी रोका भी था, पर वह हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने लगे कि 'मेरा भी कोई हौसला है, मेरी इकलौती लड़की है.' अब आप अपने को ही देखिए, लड़के की शादी आपने भी की. आपने साफ-साफ कह दिया कि 'मुझे कुछ नहीं चाहिए'. पर लड़कीवाले माने नहीं!

"आप मांगते तो पांच-दस लाख रुपये आसानी से मिल जाते. पर आपको दहेज मांगने से घृणा थी, फिर भी लाख-दो लाख तो मिल ही गये. ऊपर से रिसेप्शन में सेठ, साहूकार मंत्री, रईस, अफसर नकद, जेवर, साड़ी, कीमती भेंट के रूप में लाख रुपये का नकद दे गये. आपने तो यह सब नहीं चाहा था, पर जब लोग दे जायें तो आप क्या कर सकते हैं. कसम भगवान की, मैंने एक पैसा भी किसी से कुछ न चाहा था... पर दुश्मन लाया.."

रघुनंदनजी संतुष्ट होकर मुस्कराने लगे. उन्होंने एक कागज पर कुछ लिखकर भारतीजी को दिया. कुछ देर तक वे पता नहीं क्या गुप्त मंत्रणा करते रहे, फिर रघुनंदन जी उठ खड़े हुए.

उनके जाने के बाद भारतीजी उठकर भीतर चले गये. दस मिनट बाद बाहर आये तो बुढ़िया को उसी तरह बैठे देखकर रुखाई से बोले, "अरे माताजी, मैंने कह दिया न कि एक अर्जी लड़के से और भिजवा देना... मैं कोशिश करूंगा..."

बुढ़िया बिना कुछ खाये-पीये सवेरे ही यहां पहुंच गयी थी. ढाई-तीन घंटे कमरे में बैठे-बैठे उसका शरीर अकड़ गया था. वह किसी तरह कांखकर उठी और लड़के के साथ बाहर निकल गयी.

पर इसी समय एक अजीब घटना हुई. सामने फाटक से प्रवेश करके पांच-छह व्यक्ति लपककर इधर आते हुए दिखाई पड़े.

उनके चेहरों पर भय-जनित उत्तेजना और घबराहट दिखाई दे रही थी.

भारतीजी का ध्यान भी उधर आकर्षित हुआ और वह भी अचंभे से उन्हें देखते रहे.

कुछ ही देर में वे कमरे के अंदर आ गये. उनमें बड़ी-बड़ी मूंछों वाले एक व्यक्ति ने घबरायी हुई आवाज में कहा, "नेताजी, गजब हो गया. शहर में दंगा हो रहा है. दूकानें लूटी जा रही है. मकानों में आग लगायी जा रही है. छुरे चल रहे हैं. मकानों से धुआं उठ रहा है..."

भारतीजी का चेहरा फक पड़ गया. वह भी घबराकर उठ खड़े हुए, "यह कैसे हो गया?"

"कुछ दिनों से दो गुंडों में आपसी रंजिश व लड़ाई चल रही थी. उनमें से एक हिंदू है और दूसरा मुसलमान. आज दोनों दल काफी संख्या में इकट्ठे हुए और उनके बीच जो मारपीट हुई, उसने सांप्रदायिक दंगे का रूप धारण कर लिया. यहीं हमने सुना है.."

भारतीजी तेजी से बरामदे में गये और उन्होंने वहां इकट्ठे लोगों से कहा, "आप लोग जल्दी से अपने-अपने घर जाइये. शहर में दंगा हो गया है. कोई खतरा नहीं है, चले जाइये... शांति हो जाने पर आइयेगा..."

जब लोग घबराहट में भेड़-बकरियों की तरह एक दूसरे से टकराते हुए वहां से चले गये तो भारतीजी ने रामधन से फाटक बंद करके उसमें ताला लगाने के लिए कहा.

उनके कार्यकर्ता भी कुर्सियों पर बैठ गये थे. मूछोंवाले व्यक्ति ने धीमे स्वर में पूछा, "अब क्या किया जाये, यही पूछने हम आये हैं. मेरा तो खयाल है कि शहर में पद-यात्रा करने व शांति जुलूस निकालने से अच्छा असर पड़ेगा. आपके व्यक्तित्व का भी बड़ा प्रभाव पड़ेगा."

भारतीजी ने नाराजी से उसको घूरते हुए कहा, "हर काम का एक समय होता है. मैं अभी अधिकारियों को फोन करके फटकारता हूं. आप लोग भी घर जाइये... हां, मेरा एक बयान अखबार के दफ्तर में होते हुए निबटा जाइयेगा. मेरा खयाल है, उस इलाके में कोई गड़बड़ी न होगी.."

इसके बाद भारतीजी ने उन लोगों को देने के लिए एक कागज पर निम्नलिखित वक्तव्य लिखा—

'देश एक संकट के दौर से गुजर रहा है, जातिवाद व व संप्रदायवाद हमारे देश के दो भयंकर शत्रु है. जनता को इन दोनों शत्रुओं से बचकर रहना होगा. विभिन्न जातियों व संप्रदायों के बीच प्रेम व भाई-चारा स्थापित करने से ही हमारा देश विश्व में सम्मानपूर्ण स्थान बना सकता है. मैं अपील करता हूं कि लोग छोटे-छोटे झगड़ों को छोड़कर ऊपर उठें और इस शहर व देश की प्रेम शांति की महान परंपरा पर चलते हुए नवनिर्माण में आज योग दें.' □

● 521-ए/1 कक्कड़ नगर, दरियाबाद, इलाहाबाद, उ.प्र.

## —चलते-चलते—

**मुल्ला नसीरुद्दीन एक बार नमाज के लिए मस्जिद गये. उनका कुर्ता पीछे से कुछ ऊंचा उठा हुआ था. जब नमाज शुरू हुई तो मुल्ला के पीछे वाले साहब ने उनका कुर्ता खींचकर ठीक कर दिया. मुल्ला ने इसके जवाब में आगेवाले का कुर्ता नीचा करने के लिए खींचा.**

**उन साहब ने पीछे मुड़कर मुल्ला से पूछा, "यह क्या हरकत है?"**

**"मुझसे क्या पूछते हो, पीछे वाले से पूछो, हरकत उसी ने शुरू की है."**

**मुल्ला ने जवाब दिया.** □



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सांझ ढले

**• कर्त्तार सिंह दुग्गल**

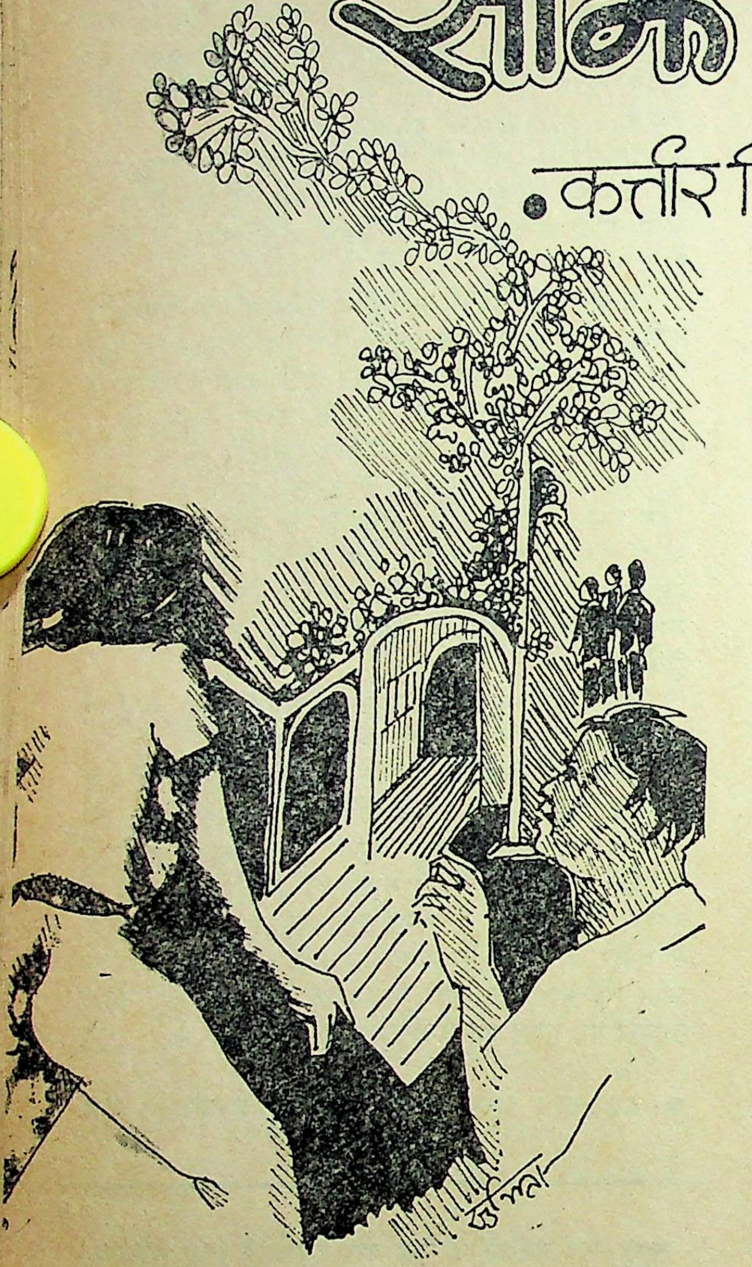

सिटी वुड से निकलते-निकलते, उस दिन फिर सांझ हो गयी थी. उधर परछाइयां ढलतीं, इधर सिटी वुड जैसे बुहार दिया जाता. मर्द, औरत, बच्चे—अपने घर चल देते. सरकारी कर्मचारियों के इस शहर में अगली सुबह हर किसी को अपने-अपने दफ्तर में हाजिर जो होना पड़ता था. स्कूल जानेवालों को अपने-अपने स्कूल पहुंचना होता था.

उस दिन जब वह सिटी वुड के गेट में से बाहर निकल रहा था, एक जवान-जहान लड़की जीन-ब्लाउज पहने, पांव में चप्पल, खुले बाल आगे-पीछे नाचते हुए, तेज-तेज कदम गेट की ओर जा रही थी. अंधेरा हो रहा था. उसने सहसा रुककर पीछे देखा. इतने में लड़की गेट के अंदर घुस गयी थी, "देखो!" उसने कहा, "सिटी वुड में इस समय तीन नौजवान लड़के हैं, शायद उन्होंने शराब पी रखी है, और कोई भी नहीं. इस समय एक लड़की का सिटी वुड में अकेले जाना. . ."

"उन्हीं के साथ तो मेरी डेट है." अभी वह अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि लड़की ने मुस्कराते हुए कहा और तेज-तेज कदम, सनोवर के पेड़ों के झुरमुट में उसकी पीठ ओझल हो गयी.

उस दिन काफी अंधेरा हो गया था, जब वह सिटी वुड में से सैर करके निकला. उसके पीछे दो लड़कियां आ रही थीं, अधढकी, अधनंगी-सी. गेट के बाहर सड़क के किनारे बस एक ही स्कूटर था. स्कूटर वाला एक ओर नाली में पेशाब कर रहा था. लड़कियों ने खाली स्कूटर का हार्न बजाया. पंजाबी स्कूटर वाला अपनी शलवार के अजारबंद को गांठ लगाते हुए आया कि स्कूटर के पीछे खड़ा एक नौजवान स्कूटर में बैठ गया. लड़कियां स्कूटर वाले के मुंह की ओर देखती रह गयीं.

"एक की जगह है." स्कूटर में बैठा नौजवान बोला.

"अच्छा, सी यू." दोनों में से एक लड़की ने दूसरी से कहा और स्कूटर में जा बैठी. उसने नहीं पूछा कि स्कूटर कहां जा रहा है, लड़के ने नहीं बताया कि उसे कहां जाना है. पीछे रह गयी लड़की आकांक्षा से भरी नजरों से स्कूटर की ओर देख रही थी कि स्कूटर दूर भीड़ में खो गया.

अपनी हर-रोज की सैर करके उस दिन वह सिटी वुड में से निकल रहा था. वह और उसका कुत्ता रोमियो.

शाम भीगी-भीगी थी. हल्की-हल्की बूंदाबांदी हो रही थी. ठंडी-मीठी हवा चल रही थी. घास के विशाल मैदान जैसे मोतियों से लदे हों. चारों ओर पेड़ जैसे निचुड़ रहे थे. एक खुशबू-खुशबू-सी थी पूरे वातावरण में. कदम-कदम पर फूल गर्दन उठाये खिलखिलाकर हंस रहे थे, जैसे रोक-रोक कर बिठा रहे हों.

उसने देखा, सामने वह चली आ रही थी. शराबी-रंग



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**पहले वे अनेक थे, फिर पांच रह गये, फिर चार, फिर तीन, फिर दो और फिर एक... शामें उसी तरह आ रही थीं, जा रही थीं, पर एक साथ आकर बैठनेवाले वे लोग किस तरह एक-एक कर कम होते चले गये? मनुष्य जीवन की नियति को रेखांकित करती पंजाबी कथा**

की पिस्ती कुत्तियावाली. जब भी वह सिटी वुड की सैर के लिए आता, उनकी भेंट अवश्य हो जाती. कई बरसों से यूं हो रहा था. अब तो इसके बालों में चांदी की तारें भी दिखाई देने लगी थीं. इसके अपने बाल कब के सफेद हो गये थे. कभी वह सैर करने आ रही होती और यह लौट रहा होता, कभी वह सैर करके लौट रही होती और यह सैर के लिए जा रहा होता, लेकिन क्या मजाल जो कभी एक दूसरे की ओर उन्होंने आंख उठाकर भी देखा हो.

उस शाम, न जाने क्या हुआ, कैसे हुआ, उनके देखते-देखते शाम की ढलती परछाइयों में, उसके पीछे-पीछे आ रहा रोमियो, लपककर गया और शराबी रंग की पिस्ती से अठखेलियां करने लगा. यह उसे पुकार रहा था. वह उसे पुकार रही थी. और फिर उसके हाथ से पिस्ती की जंजीर छूट गयी.

कई वर्षों से वह सिटी वुड में सैर करने आ रहा था.

विशाल लान, जगह-जगह नाच रहे, कूद रहे फव्वारे, हरे-भरे खेत, खुली-खुली सड़कें. गर्मियों में जगह-जगह पानी का छिड़काव किया गया होता. सर्दियों में चारों ओर धूप खिली होती. महकते हुए फूल, चहकते हुए पक्षी, खेलते, किलकारियां भरते बच्चे.

कभी वह अकेला आता, कभी उसके साथ उसकी पत्नी होती या फिर कोई मित्र. वह तो अपने मिलनेवालों को भी बातें करते हुए अपने साथ सैर के लिए ले आता था.

गर्मियों में शाम के सात बजे निकलता, सर्दियों में छह बजे, जब से वे इस कालोनी में आये थे, उसका यह दस्तूर था. पहले वह नौकरी करता था, अब रिटायर हो चुका था. पहले वह सैर को बस सैर के लिए आता था, अब उसने सैर का कभी नागा नहीं किया था. उसके डॉक्टर की यह हिदायत थी.

उस दिन सांझ ढले वह सिर नीचे झुकाये सैर करके सिटी वुड से निकल रहा था कि गेट पर जामुनी रंग के फूलों की एक बेल की ओर इशारा करके एक बच्चा अपनी मां से उस बेल का नाम पूछ रहा था. मां को बेल का नाम मालूम नहीं था.

"अंकल को पता होगा?" वह बच्चा यह कहते हुए बड़े चाव से उसकी ओर बढ़ा. उसे तो स्वयं उस बेल का नाम नहीं पता था. हर रोज उस बेल को देखता था, कई बरसों से देखता चला आ रहा था. उसे कभी यह खयाल नहीं आया था कि इतने प्यारे फूलों की लता का नाम वह किसी से पूछे. खाली-खाली आंखों से वह बच्चे की ओर देखता हुआ पानी-पानी हो रहा था.

"न मालूम इसका कर्ज मैं कब चुकाऊंगा?" हमेशा वह मन ही मन कहता. जब वह सांझ ढले उसे सामने सैर के लिए आते देखता, सिटी वुड का माली एकदम खड़ा होकर उसे सलाम बजाता. कोई कारण नहीं था कि माली उसके लिए यूं आदर से खड़ा हो, हाथ जोड़े, आदाब करे. कई बार माली अपने साथियों के साथ गप्पें हांक रहा होता, उसे देख बीच में ही रुक जाता. कई बार वह खुरपी चला रहा होता, उसे देखकर वह अपना हाथ रोक लेता. कई बार वह बीड़ी पी रहा होता, उसे देखकर बीड़ी फेंक देता. कई बरसों से यूं कर रहा था. आखिर क्यों? वह दूसरे सभी सैर करनेवालों की तरह था. ढेर-सारे लोग सिटी वुड सैर के लिए आते थे. आखिर उसी के लिए ही क्यों वह यूं करता था. हर शाम उसे सत्कार देता.

और यूं करते-करते माली बूढ़ा हो गया. उसकी नजर कमजोर हो गयी. अब उसे सुनाई भी कम देता था. नौकरी से भी उसकी कब की छुट्टी हो चुकी थी. उसकी जगह उसके बेटे को भरती कर लिया गया था, लेकिन उससे बेकार नहीं बैठा जाता था. सिटी वुड के बाहर, गेट के पास उसने बीड़ी-सिगरेट बेचना शुरू कर दिया. सुबह उसका बेटा बीड़ी सिगरेटों की कांच की संदूकची सिर पर उठाये, बूढ़े बाप को गेट के बाहर बिठा जाता. शाम को संदूकची उठाकर उसे घर ले जाता. सांझ ढले माली को दिखाई देना बंद हो जाता था. बेटे के कंधे पर हाथ रखे वह हौले-हौले कदम उसके पीछे चल देता.

उस दिन छड़ी थामे वह सैर के लिए सिटी वुड के गेट पर पहुंचा ही था कि एकाएक पानी बरसने लगा, मोटी-मोटी बूंदें. जाड़े के दिन थे. उसने आगे बढ़कर बूढ़े माली की संदूकची सिर पर उठा ली, "बेटे, तुम आ गये, जीते रहो." माली ने कहा और उसका कंधा थामे हौले-हौले कदम घर की ओर चल दिया.

अभी चार कदम ही वे गये होंगे कि बूढ़े माली का बेटा सामने से दौड़ता हुआ आया, "साहब, आप!" और उसने संदूकची अपने सिर पर रख ली.

"कौन?" बूढ़ा माली पूछने लगा.

"यह तो साहब हैं!" बेटे ने बाप को बताया. वह उसका नाम थोड़े ही जानता था.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## लघुकथा

# आदमी

धीरेंद्र अस्थाना

हालांकि दफ्तर से साढ़े पांच बजे छूटकर अपने बस-स्टाप पर पहुंचने तक के सफर के दौरान उसने बेइंतहां थकान के बावजूद तय किया था कि घर पहुंचकर, आज वह तीन काम जरूर करेगा. पहला, अपने पिता के चौथे खत का जवाब देने का, दूसरा अपनी छःमाह पूर्व किसी कहानी को फेयर कर लेने का और तीसरा तथा अंतिम काम अपनी पेंट-कमीज को धो लेने का, क्योंकि बदन पर का जोड़ा अब अधिक से अधिक एक दिन और पहना जा सकता है.

मगर साढ़े सात बजे जब वह भीड़ के द्वारा अपने मुहल्ले के स्टाप पर आलू की बोरी की तरह फेंक दिया गया तो वह तीन में से किन्हीं दो कामों को जरूर ही निपटा देने के लिए उनकी प्राथमिकता तय कर रहा था. रास्ते के होटल में रुककर खाना खाने के बाद जब वह साढ़े आठ बजे कमरे का ताला खोल रहा था तो दिल को मजबूत करता हुआ कहानी फेयर कर लेने के मोर्चे पर डटा हुआ था.

अपने कमरे में घुसकर बिजली जलाने पर उसने पाया कि फर्श पर तीन चिट्ठियां हैं और एक पत्रिका. चारों को खाट के सिरहाने रख कर उसने दरवाजा बंद किया, जूते उतारे तथा कमर सीधी करने और चिट्ठियों को फुर्सत से पढ़ने के लिए खाट पर अधलेटा हो गया.

ओह. . .! खाट को पकड़ते ही किसी सत्तर वर्षीय बूढ़े की तरह उसका गला गनगनाया और वह पूरी तरह खाट पर पसर गया.

उसका पूरा का पूरा बदन इस तरह दुख रहा था मानों किसी ने लाठियों से पीटा हो. खुद-ब-खुद उसकी आंखें मिचती चली गयीं. वह नींद और थकान और दर्द और झुंझलाहट में छटपटाता हुआ कभी दफ्तर, कभी जिंदगी और कभी व्यवस्था के विरुद्ध सोचता रहा और डूबता गया.

अचानक उसे लगा, कहीं पास ही बहुत तेज शोर हो रहा है. संभवतः उसके दरवाजे के सामने ही. उसने सोचा कि वह उठे, देखे कि बात क्या है, पर आंखें थीं कि बंद ही होती जा रही थी. उसने बहुत-बहुत सोचा कि उठे, पता करे.

अंततः वह नहीं ही उठ सका. बेहोशी के-से आलम में डूबते-उतराते उसे लगा कि शोर ज्यादा ही बढ़ गया है और अब तो उसके दरवाजे पर थाप भी पड़ने लगी है.

लगभग चीखता और झूमता हुआ-सा वह दनदना कर उठा और दरवाजा खोल दिया. बाहर काफी भीड़ थी.

इससे पहले कि वह अचरज में डूबी आवाज के साथ पूछता, क्या बात है, भीड़ ने लगभग चिढ़े हुए अंदाज में पूछा, "क्या बात है? तुम इतनी ऊंची आवाज में क्यों रो रहे हो?" □

● बी-2/417 यमुना विहार, दिल्ली-110053

---

सांझ ढलती और तब वे उठते. जैसे उठने को उनका जी न चाह रहा हो. घास के विशाल मैदान में उनकी पंचायत लगती थी. कालोनी के पांच बूढ़े थे. जब से रिटायर हुए, छड़ियां थामे, ठीक समय पर घर से निकलते, चाहे सर्दी हो, चाहे गरमी, टहलते-टहलते सिटी वुड में पहुंचते और फिर घास की मखमली शैया पर बैठे वार्त्तालाप करने लगते.

हर कोई दूसरे की सुनता, हर कोई अपनी कहता.

और फिर वे चार रह गये. अब वे गोल दायरा बनाकर नहीं बैठते थे. चलते-चलते जब वे घास के मैदान में पहुंचते, वे चौकोर बना लेते. एक उत्तर, एक दक्षिण, एक पूरब, एक पश्चिम की ओर बैठ जाता. वैसी की वैसी दुनिया भर की बातें.

और फिर एक और लुढ़क गया. अब वे तीन रह गये थे. आजकल वे लान में नहीं बैठते थे. लान के किनारे, फव्वारे की मेंड़ पर बैठते. एक बीच में, एक दायें, एक बायें. फव्वारे की ओर उनकी पीठ होती. घास के लान की ओर देखते, एक दूसरे का सुख-दुख बांटते रहते.

फिर एक और छंट गया. आजकल बस दो छड़ियां आती थीं.

फव्वारे की मेंड़ पर एक दूसरे की ओर मुंह करके वे बैठ जाते. दीन-दुनिया की बातें, एक दूसरे की बीमारियां, जो रोग एक को होता, दूसरे को भी जैसे वही तकलीफ महसूस होने लगती. सिरदर्द, जोड़ों का दर्द, थकन-थकन, रात नींद का खुल-खुल जाना.

और उस दिन वह अकेला था. फव्वारे की मेंड़ पर बैठा, हरे घास के लान की ओर पीठ किये, फव्वारे की ओर देख रहा था. फव्वारे का पानी यूं झर रहा था जैसे टप-टप आंसू गिर रहे हों, बहते चले जा रहे हों.

सांझ ढल गयी थी, फिर भी वह वैसे का वैसा बैठा था. बूंद-बूंद फव्वारे का पानी झर रहा था. □

● पी—7, हौज खास, नयी दिल्ली-110016



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

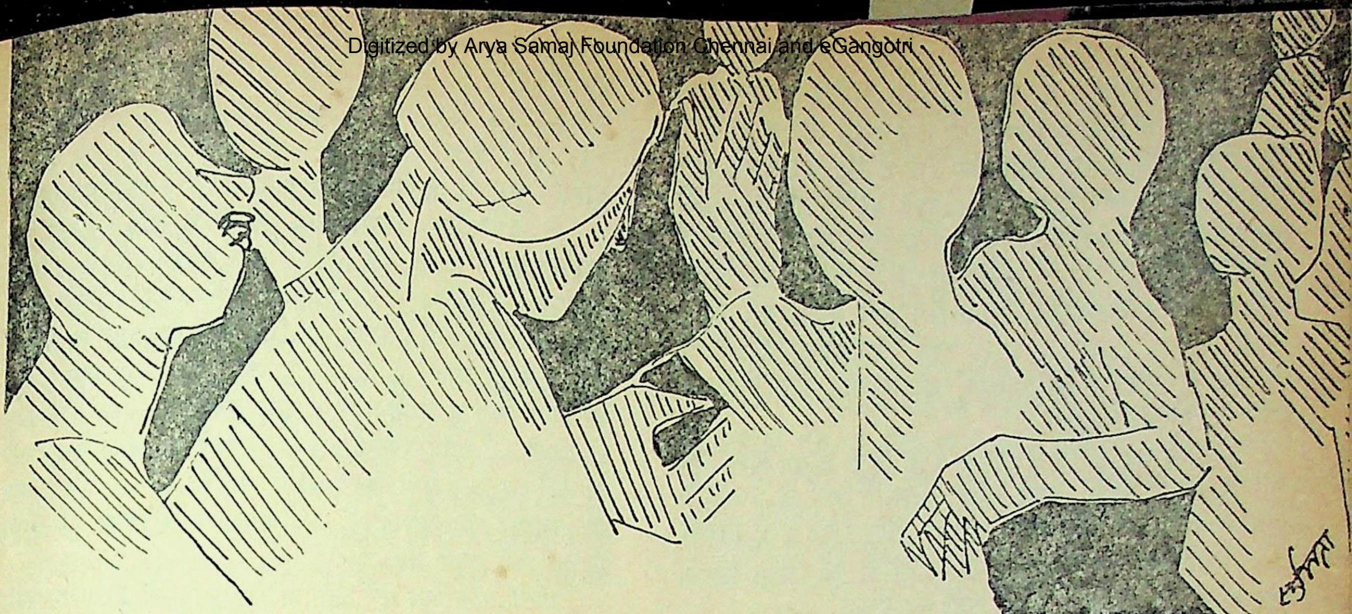

# रामधन भाई

• सच्चिदानंद धूमकेतु

**अगर खेतों को परती रखना, राष्ट्रीय संपत्ति को नुकसान पहुंचाना है, तो क्या मजदूर की मेहनत राष्ट्रीय संपत्ति नहीं?—— वाजिब मजदूरी और किसान को किसान की तरह जीने के हक को रेखांकित करती कहानी कि तथाकथित रूप से शोषित लोगों का संघर्ष जमाने को किस कदर झकझोर सकता है. . .**

नाम था रामधन भाई. रमधनिया, रामधन, रामधन भाई. बचपन में बस्ती के लोग उसे रमधनिया कहते थे. ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती गयी, उसके नाम में परिवर्तन होता गया और लोग उसे 'रामधन भाई' कहने लगे.

वह सभी जाति के लोगों का रामधन भाई था. बूढ़े उसे भाई कहते, बच्चे भाई कहते, यहां तक कि औरतें भी उसे भाई के संबोधन से ही पुकारती थीं. सिर्फ गांव में ही नहीं, पूरे इलाके में वह रामधन भाई के नाम से जाना जाता था.

पूरी बस्ती में अकेला वही लड़का था जो कोस भर जंगल पार करके दूसरे गांव के स्कूल में पढ़ने जाता था. नित्य सुबह नंगे पांव स्कूल जाना और अंधेरा होने के बाद ही वहां से वापस आना. उसका बाप मंगल उसे पढ़ा-लिखाकर बड़े-बड़ुआ के लड़कों की पांत में देखना चाहता था. खुद मजदूरी करता, आधा पेट खाकर रहता लेकिन रमधनिया की पढ़ाई में उसने कभी कोई कमी नहीं होने दी थी.

वह बिहार बंगाल की सीमा पर स्थित खसरा गांव में पैदा हुआ था. युगों से वह बस्ती मिरमिरायी-सी लग रही थी. जैसे पूरी आबादी को खसरा रोग ने जकड़ लिया हो और उनके शरीर का खून चूस-चूसकर उन्हें खुखंडी बनाता चला जा रहा हो.

गांव के बाहर फैला हुआ था झकझक बालू का मैदान. अंधड़ के साथ उड़-उड़कर बने हुए बालू के छोटे-छोटे टीले. उन ठूहों को कलेजे से सटाये छोटे-छोटे कास-पटेर और झौआ के पेड़. उनकी टहनियों और पत्तियों पर सिर पटकती अंधड़ झक्खड़वाली मटैली हवा रहती थी. निचरी जमीन जो कभी पैदायशी कोशी नदी की उथली धारा थी, धीरे-धीरे सूखती हुई दलदल में तब्दील हो गयी थी. उसके किनारे-किनारे सरपत और सरकंडों का घना जंगल था. जहां से दिन-रात उस वीरान उजड़े भूखंड की सिसकियां और करुण रुदन ही सुनायी पड़ता था. यह बात दीगर थी कि बनपाखी का कोई-कोई जोड़ा पंख फड़फड़ाता बांक. . . बांक. . . ई. . .कुही. . . कुही. . . आवाजें बिखेरता इस झुरमुट से उस झुरमुट की ओर दौड़ लगा देता था. उनके डैनों की सपसपाहट और हि. . की. . . हि. . की. . की पतली आवाज उस रोते हुए प्रांतर में कुछ क्षणों के लिए खुनखुनाहट पैदा करने की कोशिश करती. झाड़ियों में उनके छिपते ही फिर वहां बची रहती, युगों की अटूट खामोशी, उदासी, नैराश्य और विधवा माटी की आंखों से झरझर झड़ते आंसू की दुखती आवाज टप. . . टप. . . टप!



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी बात नहीं थी कि पूरा गांव वीरान ही बना हुआ था. कुदरत की गोद से खिसककर एक हरित आंचल भी गांव के सीने पर गिरा था, जहां लंबे-चौड़े भूभाग पर फसलें लह-लहाया करती थीं. आम के गदराये बगीचे भी थे. उनकी डालियों पर बैठकर छोटी चिड़ियां मादक संध्या की अगुआई करते हुए सोहर गाती रहती थीं. मैना चहचहाती रहतीं. नीलकंठ और कठफोड़वा अपने डैने हवा में फहराते रहते. पंड़क. कुह. . . कुह. . करते रहते. अमराइयां थीं. बांसों के घने झुरमुट में ललमुनिया, खंजन और पतंकी अबाध गति से थिरकती रहतीं.

लेकिन वह हरित धरती गांव के सिर्फ दो व्यक्तियों की ही थी. मुंशी प्यारे लाल और अदालत सिंह ने उस हरे-कचोर भूखंड को जबरदस्ती बंधुआ मजदूर की तरह गिरवी बना रखा था. बाकी साठ-पैंसठ परिवारों को मिला था—दुख-दरेग, संतोष और कोशी नदी का सराप!

हां, कोशी नदी ने श्राप ही दे रखा था. पंद्रह वर्ष पहले उनकी भी अपनी जमीन थी. उनके घरों में भी फसल आया करती थी. वे अपने खेत जोतते, कोड़ते और उपजाया करते थे. लेकिन एक रात कोशी ने ऐसा भीषण रूप धारण कर लिया कि उनके तमाम खेत रेगिस्तान के छोटे टुकड़े के रूप में बदल गये. मिट्टी के ऊपर दूर-दूर तक बालू भर दिये गये. खेतों की कोई निशानी नहीं बची. सिर्फ बची रही, कोशी की गर्जना की आवाज. उसके क्रूर अट्टहास की कर्कश अनुगूंज.

लगता था कि पूरी बस्ती कोशी के अभिशाप से पीड़ित हो चुकी है और दिन-प्रतिदिन वह टूटती चली जा रही थी. वे परिवार जो कुछ वर्ष पूर्व अच्छे खाते-पीते माने जाते थे, आज भुखमरी के कगार पर खड़े थे. अधिकांश परिवार लगभग भूमिहीन बन चुके थे. मुंशी प्यारे लाल और अदालत सिंह के खेतों में काम करने के अलावा उनके पास कोई चारा नहीं था. वे छोटे किसान समय के प्रवाह में निम्नतर स्थिति में आ पहुंचे थे. उनका सामाजिक जीवन खेतिहार किसान से मजदूर के रूप में बदल चुका था. जिनके पास थोड़ी-बहुत जमीन थी, उनकी भी हालत अच्छी नहीं थी. उन्हें भी दूसरे के खेतों में मजदूरी करने जाना पड़ता था.

मुंशी प्यारे लाल और अदालत सिंह के पास जो भी उपजाऊ जमीन थी थी, वह कभी बस्ती के मजदूर परिवारों की खानदानी संपत्ति थी. जमीन के ऊपर जमींदार की माल-गुजारी बाकी पड़ गयी थी. निलामी का इश्तिहार निकला और आनन-फानन में जमींदार के कारिंदों ने पूरी जमीन नीलाम कर दी. खरीददार थे मुंशीजी और अदालत सिंह.

मुकदमा दयार किया गया. बस्ती के लोग दो वर्ष तक थाना-कचहरी करते रहे, लेकिन कानून के पीड़ितों ने पूरी बस्ती के मुंह के निवाले छीनकर उस जमीन को मुंशीजी और अदालत सिंह को ही दे दिया था. जिस दिन कचहरी में फैसला सुनाया गया, बस्ती में किसी के यहां चूल्हा नहीं जला. मुंह का कौर छिन जाने के कारण सभी अंदर ही अंदर घुमड़कर रो रहे थे. . . उधर भूस्वामियों के दरवाजे पर खुशियां मनायी जा रही थी, वह ऐसी खुशी थी जो गरीब परिवारों की कब्र पर मनायी जा रही हो! वह शाम, बस्तीवालों के लिए शहादत की शाम थी.

उनके पास अब बच रही थी सिर्फ कोशी दियारावाली जमीन, जहां से वे थोड़ी-बहुत फसल ले आते थे. पर एक रात कोशी ने उस भूखंड को भी अपने जबड़े में समेट लिया था और उन्हें मुंशीजी और अदालत सिंह के खेतों में मजूरी करने के लिए छोड़ दिया था. कोशी का श्राप . . . सत्ती थान की देवी का अभिशाप!

बदलू कुम्हार कहता था, "माई का सराप सबको लील जायेगा. पूरी बस्ती मसान में बदल जायेगी. न रहेगा आदमी न आदमजात. दिन में ही कुकुर-सियार रोयेंगे."

जिस दिन सर्वे सेटलमेंट के कैंप गांव के बाहर लगने लगे, बस्ती के लोगों के दिल में फिर नयी आशा जग गयी. जमींदारी खत्म हो जाने के बाद सुराजी सरकार के अधिकारियों से उन्हें अपनी पुश्तैनी जमीन वापस मिल जाने की पूरी उम्मीद थी. वैसे मुंशीजी और अदालत सिंह के द्वारा की जा रही उनकी खातिरदारी देखकर उन्हें भय भी हो रहा था. वे दोनों सर्वे-अधिकारियों की सुख-सुविधा जुटाने में पूरी तरह सतर्क थे. शाक-सब्जी और दूध से लेकर उनके खाने-पीने का पूरा इंतजाम उन दोनों ने ही संभाल लिया था. यहां तक कि रात के अंधेरे में दूर-दराज के कस्बों से पेशेवर लड़कियां भी उनके कैंप में भेजी जा रही थीं. नतीजा यह हुआ कि दखल दिखाकर नये पट्टे मुंशीजी और अदालत सिंह के नाम जारी कर दिये गये. बस्ती के बचे सारे परिवारों को बालूवाली जमीन के टुकड़े ही दिये गये.

बस्ती के लोगों ने इसका काफी विरोध किया. उच्चा-धिकारियों के पास अर्जियां भेजी गयीं लेकिन उनकी आवाज निस्तरंग बनती हुई हवा में विलीन हो गयी थी. उस दिन जब कैंप उठ रहा था तो बस्तीवालों ने अपना धैर्य खो दिया. मंगल के नेतृत्व में उन लोगों ने अधिकारियों का घेराव कर दिया था. वे सभी न्याय मांगते हुए नारे लगा रहे थे. पूरी बस्ती के मर्द, औरत, बच्चे और बूढ़े उस जगह जमा थे. वे सभी इंसाफ की भीख मांग रहे थे जबकि तमाम अधिकारी उन्हें डांटते हुए कैंप ग्राउंड खाली कर देने का आदेश दे रहे थे.

दोपहर बीत गयी. मंगल बस्तीवालों को लेकर डटा रहा.

क्या आप जानते हैं,
साहित्य के क्षेत्र में भारत का
सबसे बड़ा और विश्व-प्रख्यात
पुरस्कार कौन-सा है. . . ?



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अचानक पुलिस का दस्ता अधिकारियों की हिफाजत के लिए मौके पर आ धमका. दोनों ओर से गहमागहमी बातें होने लगीं. नौबत लाठियां चलने की आ गयीं. हमेशा के लिए बस्ती की रोटियां छिन जाने के कारण मंगल ने कड़ककर कहा था,"हम यहां से नहीं हटेंगे और न किसी अधिकारी को यहां से जाने देंगे. हमें इंसाफ चाहिए."

वही हुआ जिसका डर बस्तीवालों को था. हंगामा करनेवाली भीड़ को तितर-बितर करने के लिए पुलिस ने गोलियां चलायीं. . .और बस्ती का अगुआ मंगल मारा गया. एक सपना जो शहीद मंगल ने अपने कलेजे में वर्षों से पाल रखा था; उसकी कुर्बानी के साथ अचानक खत्म हो गया.

गांववाले मंगल की लाश के इर्द-गिर्द खड़े थे और निस्तेज आंखों से उसे देख रहे थे. पुलिस की जीप अधिकारियों को लेकर जा चुकी थी. बच रही थीं पहियों से उठी धूल की मोटी परतें जो तमाचों की तरह उनके चेहरों पर बैठती चली जा रही थीं. . .और कुछ नहीं!

रामधन वह दिन भूल नहीं सका है, जिस दिन उसके बाप का खून से लथपथ शरीर सती चौरा पर पड़ा हुआ था और उसकी मां दोहथिया मारती हुई फूट-फूटकर रो रही थी. रो तो वह भी रहा था, लेकिन टोले के अधिकांश लोग भयभीत मेमने की तरह बुझी आंखों से कभी लाश को तो कभी अपने हाथों की गिरफ्त में पड़ी कमजोर लाठियों को देख रहे थे. उनका भयाक्रांत होना वाजिब था. बाप की लाश फूंककर टोलेवाले वापस लौटे ही थे कि पुलिस के सिपाही बस्ती में आ धमके और टोले को रौंदने लगे. लोगों को पीटा गया. उसकी मां को बेहोशी पर बेहोशी आ रही थी. बावजूद इसके थानेदार ने उसे भद्दी गालियां दीं. पुलिसवाले टोले के मवेशी अपने साथ लेते गये, चौखट,किवाड़ी, खटिया-मचिया यहां तक कि बरतन-बासन भी उन्होंने नहीं छोड़ा.थानेदार ने मंगल सहित पूरे टोले को उग्रवादी करार दे दिया था. तीन-चार बार पशुओं की तरह हांककर उन्हें थाने ले जाया गया. पूछताछ की गयी. मारा-पीटा गया.

उनकी खानदानी जमीन जाती रही. थोड़ी-सी पूंजी थी, वह भी थाना-पुलिस करते-करते खत्म हो गयी. वे बिल्कुल टूट चुके थे, जबकि मुंशी प्यारे लाल और अदालत सिंह का मनोबल काफी बढ़ गया था. वे अब पहले से अधिक बर्बर और क्रूर हो गये थे. क्रूर निगाहों से बचने के लिए टोले के लोगों ने अपने को उनकी इच्छा और मेहरबानी पर छोड़ दिया था. बाप के मरने के बाद रामधनिया को अपनी पढ़ाई-छोड़ देनी पड़ी और वह भी बस्ती के दूसरे लोगों की तरह मुंशीजी और अदालत सिंह के यहां मजदूरी पर जाने लगा. वही जमीन जो कुछ वर्ष पहले उनकी अपनी थी, अब उसी जमीन पर वे मजूरी कर रहे थे. उस हरित धरती की सोंधी महक, फसलों के बौराये गंध, खेतों में उगे नन्हें, मुलायम गुमनाम फूलों की खुशबू जो कुछ वर्ष पहले उनकी झोंपड़ियों की ओर भागती आती थी, अब उनकी सिर्फ यादें रह गयी थीं. लोगों के पास बचा हुआ था-बस, मखौल उड़ाता वर्तमान!

रामधनिया उनके खेतों में मजदूरी करने जरूर जाया करता था, लेकिन पूरा दिन वह गुमसुम ही बना रहता.

मुंशीजी डांटते हुए कहते, "जब से बाप मरा है, तू गूंगा बन गया है क्या?. . .काम करने में फिसड्डी, लेकिन पूरा पाव भर सत्तू गटक नारायण कर जाता है."

अदालत सिंह कहते, "स्साला बड़ा ही घमंडी निकलेगा. किसी से कुछ बोलता ही नहीं. पढ़ने चला था. . .जैसे स्साले लाट साहब बनेंगे. . .हूंह!"

चिलचिलाती धूप के किनारे झुरमुट की छांव रामधन को अपने पास बुलाती, लेकिन वह उनके इशारे को नकारता हुआ तपती रेत पर बैठा रहता. धुंध के साथ कोई रहस्यमय संगीत की मधुर ध्वनि उसे वहां सुनायी पड़ती. कोई अनपहचानी आस्था उसे घेरे रहती. रेगिस्तान के उस संगीत में वह किसी अनागत विश्वास की गंध महसूसता. दूर आसमान में पंख फड़फड़ाती लाल सुबह उसे दिखायी पड़ती. . .

उस समय उसके हृदय में अनजाने ही नन्हा-सा संकल्प तिरने लगता. वह फुसफुसाकर कहता-'एक न एक दिन यह हवा तमाम रेत को उड़ा ले जायेगी और हमें दे देगी, हमारी अपनी जमीन. फसल से भरी हुई धरती, जो कोशी ने हमसे छीन ली है.'

रामधन तरह-तरह की कल्पनाएं करता हुआ गांव वापस लौटता. कभी-कभी वह खेतों में काम पर न जाकर बदलू कुम्हार के पास चला जाता और उसके द्वारा बनायी हुई माटी की मूरतों को गौर से देखता रहता. घोड़े-हाथी से लेकर देवी-देवताओं की मूरतें. उनके ऊपर बदलू रंग-रोगन चढ़ाता और दूर-दराज के मेले तमाशे में बेच आया करता था. एक दिन जब बदलू के पास रामधन बैठा हुआ था तो अचानक उसने पूछा, "काका! क्या तुम मेरे बाप की भी मूरत बना सकते हो?"

"जरूर बना सकता हूं. उसे मरे हुए पांच-छह वर्ष हो गये तो क्या हुआ! उसका चेहरा अभी भी मेरी आंखों के सामने घूम रहा है."

"तो फिर बना दो काका, काफी बड़ी मूर्ति."

बीच ही में बात काटते हुए बदलू ने पूछा, "तुम उस मूर्ति का क्या करोगे?"

"चौरा पर रखूंगा. . सत्ती थान के चौरा पर."

बदलू विस्फारित आंखों से उसे देखता हुआ बोला "कहीं ऐसा भी हुआ है! कहां मनुख और कहां देवता! वह;

साहित्य के क्षेत्र में भारत का सबसे बड़ा और विश्व-प्रख्यात पुरस्कार है—
'भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार'



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो भगवानजी के रहने का असथान है."

रामधन ने जवाब नहीं दिया, सिर्फ मुस्कराता रहा. शाम को अलाव के नजदीक बैठे हुए लोगों को बदलू ने रामधन के दिल की बात बता दी. सुनकर सभी हैरान हो उठे. खासकर जब अदालत सिंह को यह जानकारी मिली तो उन्होंने रामधन से पूछा, "क्यों रे, तू अपने बाप की मूर्ति, देवी के स्थान पर रखना चाहता है? तुझे अपने बाप मंगल पर बहुत गुमान है क्या?"

"हां बाबू, वह तो अवतारी मनुष था, जिसने बस्ती की खातिर अपनी जान दे दी. वे देवी-देवता किस काम के जो टोले के लोगों के पेट तक भर न सकें. मिट्टी की पिंडी पर सिंदूर की पांच लकीरें लगा देने से तो वहां देवी का वास नहीं हो जाता."

अदालत सिंह कुटिल मुस्कुराहट बिखेरते हुए बोले, "छह वर्षों में पहली बार आज मैंने तुम्हारे मुंह से ऐसी बातें सुनी. बहुत सीख गये हो. कौन है गुरुमंतर सिखानेवाला?... जरूर तुम्हारे टोले में बंगाल का नक्सली नेता आता है और सुग्गे की तरह पाठ पढ़ा जाता है."

"कोई नहीं आता है बाबू, लेकिन जो बातें सही हैं, उसे कहने से डर कैसा?"

"अच्छा, तो इसी उम्र में तुम्हारे मन से डर भी खत्म हो चुका है. ठीक से रहो रमधनिया, नहीं तो तुम्हारी भी वही हालत होगी जो तुम्हारे बाप की हुई थी."

"अब तो वह बहुत पुरानी बातें हो चुकी हैं." कहकर रामधन उस जगह से हट गया. अदालत सिंह उसे जाते हुए देखते रहे. उसके टखनों से निकली पट्-पट् की आवाज उनके मस्तिष्क में कील की तरह घुसती चली जा रही थी.

सचमुच ही दो महीने भी नहीं बीते थे कि एक दिन बस्ती के मजदूर मुंशीजी और अदालत सिंह के खेतों में काम करने जा रहे थे तो रामधन उनका रास्ता रोककर खड़ा हो गया और आदेश देता हुआ बोला, "आज से बस्ती का कोई भी आदमी उनके खेतों में काम करने नहीं जायेगा, जो हमारी जमीन पर कब्जा कर मौज उड़ा रहे हैं."

बस्तीवाले हतप्रभ रह गये. एक-दूसरे को देखने लगे. एक मजदूर ने पूछा, "काम करने नहीं जायेंगे. क्यों नहीं जायेंगे?"

"क्योंकि वे हमारी बस्ती के दुश्मन हैं. हम मजदूरों के दुश्मन."

"फिर हम खायेंगे क्या?" रोज कमाना और खाना... यही तो हमारे लिलार में लिखा हुआ है."

रामधन बोला, "हम लकड़ियां चुनेंगे. उन्हें बेचेंगे. जंगल से कास-पटेर लाकर चटाइयां, डलिया और मौनी बनायेंगे."

"पागलों की तरह बातें क्यों करते हो. कास-पटेर के जंगल हमारे पेट कब तक भर सकेंगे?"

"गृहस्थों के यहां काम करने के बाद क्या तुम भर पेट खा लेते हो?...अगर उनके पथार में बैलों की तरह काम करने के बाद भी हमारे पेट भर नहीं सकते हैं तो इससे अच्छा है, अपना धंधा करना. आधा पेट खाकर मां-बहनों की गालियां सुनते रहना, क्या यही हमारी जिंदगी है?...हर्गिज नहीं."

सभी चुपचाप खड़े थे. किसी के मुंह से कोई जवाब नहीं निकल रहा था.

थोड़ी देर की चुप्पी को तोड़ता हुआ रामधन की ही उम्र का एक युवक बोला, "रामधन भाई ठीक कहता है. हम आज से उनके खेतों में काम करने नहीं जायेंगे."

पहली बार किसी ने रामधन के बदले उसे रामधन भाई से संबोधित किया था. वह ऐसा संबोधन था, जिसकी गूंज धीरे-धीरे पूरे इलाके में फैल गयी. उस समय उसकी उम्र सिर्फ बीस वर्ष की थी.

बस्तीवाले बहुत देर तक आपस में वाद-विवाद करते रहे और अंत में जीत रामधन भाई की ही हुई. एक अकेली आवाज जो अन्याय के विरुद्ध उठी थी, वह समूह की आवाजों में तब्दील हो गयी.

इसकी सूचना मुंशीजी और अदालत सिंह को मिली तो उन्होंने मुंह बनाकर कहा, "सूअर की औलाद! काम करने नहीं आयेंगे तो जायेंगे कहां. दो दिन भूखों मरेंगे तब रमधनिया की बहकी बातों का अंदाज हो जायेगा."

शाम को बदलू कुम्हार के दरवाज पर पंचायत बुलायी गयी, जहां सुबह के निर्णय को एक बार फिर से दुहराया गया. आबादी का वह हिस्सा दो वर्षों से दबा-चपा जी रहा था, रामधन के नेतृत्व में एक ऐसी मंजिल की तलाश में चल पड़ा था जो उनके लिए अनचिन्ही जरूर थी, लेकिन रामधन को शायद दूर से ही वह मंजिल दिखायी पड़ रही थी. रामधन एक हाथ हवा में हाथ भांजता हुआ बोला, "हम इस्ट्रैक पर रहेंगे. काम नहीं करेंगे. रामधन भाई... जिंदाबाद! ...जिंदाबाद!"

अपने बेटे के नाम की दुहाई सुनकर बुधनी की आंखें अनायास ही डबडबा गयी थीं. घर लौटते समय वह सत्ती चौरा पर मत्था टेकती हुई बोली, "रामधनिया की रच्छा

भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कथाकारों को उनकी रचनाओं समेत जानना एक ऐसा अनुभव है, जिसका वर्णन हम नहीं कर सकते, मगर चाहते हैं कि आप खुद करें, और...
इस काम के लिए...



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना माई, गरीब-गुरूआ का बस तेरा ही सहारा है. सभी सोवारथी हैं. अपने अंचरा में ढांककर मेरे बेटे को रखना देवी. उन लोगों ने मुझे बेवा बना दिया. मैं अपने सिनुर की किरिया देती हूं देवी माई! तुम्हारी पिंडी पर रोज सिंगारी करूंगी. रमधनिया की जिनगी सौ साल की देना. मैं सौ सिंगारी करूंगी.''

एक पखवारे तक बस्ती के लोगों ने मुंशीजी और अदालत सिंह के खेतों की ओर देखा तक नहीं. खेतों में फसल भनभना रही थी. धान की बालियां सूख-सूखकर जमीन पर गिर रही थीं. झुंड के झुंड गौरेये खेतों पर टूट पड़े थे. रात में बनैले सूअर, नील गाय आदि जंगली जानवर मस्ती-मौज से फसलों को चट कर रहे थे. उन्होंने टोले के लोगों को फोड़ने की बहुत कोशिश की लेकिन नतीजा कुछ नहीं निकला. वे सब एकजुट होकर अपने निर्णय पर अड़े हुए थे. वे दोनों दूसरे गांव के मजदूरों से काम करवाना चाहते थे, लेकिन रामधन आसपास की बस्तियों के मजदूरों से उनके खेत में काम न करने की विनती कर आया था. दूसरे गांव के मजदूर भी रामधन भाई का साथ दे रहे थे.

नतीजतन, मुंशीजी और अदालत सिंह के खेतों की पकी फसल खेतों में ही रह गयी. वे दोनों सिर धुनते हुए रामधन को गालियां देते रहे और उसे उग्रवादी करार देकर गिरफ्तार कराने की योजना बनाते रहे.

बस्ती के मर्द अब खेतों के बदले तीन कोस दूर रेलवे स्टेशन पर कुली और मोटिया का काम करते. कस्बे के गोदाम और आढ़तों में मजदूरी करते. औरतें कास-पटेर के पत्तों को काटकर ले आतीं. उन्हें सुखातीः उनके रेशे छुड़ाती और चटाइयां, डलिया, मौनी तथा अन्य घरेलू सामान बनाकर बाजार में बेच आतीं. इससे उन्हें खाने-पीने लायक पैसे जरूर मिल जाते थे.

उधर मुंशीजी और अदालत सिंह की आर्थिक स्थिति लड़खड़ा उठी थी. उनके अधिकतर खेत, मजदूरों के अभाव में परती पड़े रहते. रामधन भाई का नाम थाने में उग्रवादियों की फेहरिस्त में लिखा जा चुका था. पूछताछ के लिए उसे दो-तीन बार थाने पर भी बुलाया गया था. थानेदार मुंशीजी का हिमायती था. एक दिन उसने रामधन को बुलाकर पूछा, ''बस्तीवाले मुंशीजी के खेतों में काम क्यों नहीं करते हैं?''

''उन्हें वाजिब मजदूरी नहीं दी जाती है. फिर वे कोई बंधुआ मजदूर तो हैं नहीं. जहां चाहेंगे, काम करेंगे.''

''जानते हो खेतों को परती रखना, राष्ट्रीय संपत्ति को नुकसान पहुंचाना है?''

''क्या हमारी मेहनत देश की संपत्ति नहीं है?''

''बहुत बोलने लग गये हो. तुमने कहां से इतनी बातें सीखी?''

''यह सवाल तो अभी तक बहुत-से लोगों ने पूछा है. मुंशीजी से लेकर अदालत सिंह तक पूछ चुके हैं.''

थानेदार ने आंखें तरेरकर कहा, ''मैं मुंशी प्यारे लाल नहीं हूं. मेरा नाम दारोगा जोरावर सिंह है. अपनी औकात में ही रहा करो.''

रामधन मुस्कराता हुआ बोला, ''मैंने तो आपके साथ कोई बेअदबी नहीं की. दरअसल, जमींदारी जाने के बाद भी ये बड़े गृहस्थ अपने को पुराना जमींदार ही समझते हैं. हम मजदूरों को कम से कम इतनी मजदूरी तो मिलनी ही चाहिए जिससे हम दो वक्त खा-पी सकें.!''

''अब तुम अपने को मजदूर क्यों कहते हो! यह कुर्ता पायजामा और कंधे पर नेतानुमा झोला. क्या यही मजदूरों का लिबास है? अपढ़ बस्तीवालों को खूब ठगो. . .खूब ठगो. स्साले इसी के लायक हैं वे.'' थानेदार ने जोर का ठहाका लगाया. हंसते हुए बोले, ''सातवीं कक्षा पास हो न. . .! जिस गांव में वृक्ष नहीं होते वहां रेड़ी के पौधे की भी कद्र होती है!''

''मैं आपकी बात नहीं समझा.'' रामधन ने पूछा.

''सब समझ जाओगे, सब समझ जाओगे. मेरा नाम जोरावर सिंह है.''

शाम को जब वह घर वापस लौटा तो उसने अपना घर सूना-सूना पाया. उसकी मां सत्ती चौरा पर सिंगारी करने गयी थी. आज रामधन की आठवीं सिंगारी की लकीर बुधनी द्वारा चौरा पर खिंची जा रही थी.

मां के वापस लौटने के बाद रामधन ने पूछा, ''कहां गयी थी माई?''

''चौरा को सिनुर देने. आज मैंने आठ सिंगारी की है. सत्ती देवी से मैंने कहा है कि तुम सौ साल तक जिंदा रहो. सौ सिंगारी के साथ-साथ मैं कबूतर की बलि चढ़ाऊंगी.''

रामधन मुस्कराता हुआ बोला, ''माई! क्या तुम सौ वर्षों तक जिंदा रहोगी?''

बुधनी ने आज तक इस बारे में सोचा नहीं था. वह चुप लगा गयी.

मुंशीजी और अदालत सिंह की योजना बिल्कुल काम नहीं कर पा रही थी. उधर मजदूरों की आर्थिक स्थिति पहले से कहीं बेहतर हो गयी थी. वे अब दोनों समय भरपेट खा-पी रहे थे. उनकी झोपड़ियां जो कुछ वर्ष पहले सूरज


**पढ़िए, बहुप्रतीक्षित एवं चिरप्रतीक्षित दो अंक**

**भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कथाकार विशेषांक**

**एक और दो**

**1 और 16 दिसंबर, 1984**

**अतिरिक्त पृष्ठों में भरपूर सामग्री सहित 'सारिका' के ये विशेषांक बावक्त पाने के लिए कृपया स्थानीय एजेंट को आज ही सचेत कर दें.**




CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डूबने के बाद भयावह लगने लगता. वहां जिंदगी दिखायी पड़ने लगी थी. शाम होते ही जिस बस्ती में मौत का सन्नाटा छा जाता था, लकड़ी के अभाव में अलाव बुझे-बुझे रहते थे; वहां अब रोशनी दिखायी पड़ती है. चहल-पहल बनी रहती. अलाव जलते-रहते. . .और बूढ़े और बच्चों की हंसी सुनायी पड़ती. लगता कि मुद्दत के बाद उस श्मशानी धरती पर मुर्दों के बदले आदमी सांसें ले रहे थे.

वह दिन बस्तीवालों के लिए किसी महान पर्व से कम नहीं था जिस दिन रामधन भाई घर-घर घूमकर कह रहा था, "हमारे भाग्य खुल गये. कोशी ने हमारी बिनती सुन ली है. हमारी बालूवाली जमीन के कुछ ही नीचे मिट्टी है. काली माटी! चारों ओर माटी ही माटी है! बिल्कुल केबाल माटी!'

लोगों को विश्वास नहीं हो रहा था, लेकिन अलाव के नजदीक बैठे गांववालों के दिल में उसने विश्वास दिलाते हुए कहा था, "मैंने खुद बालू हटाकर मिट्टीवाली जमीन देखी है. बालू के डेढ़ हाथ नीचे चारों ओर माटी ही माटी है, उपजाऊ माटी."

फिर क्या था! सुबह बस्ती के मर्द, औरत, बच्चे, बूढ़े, यहां तक रोगी भी कोशी दियारा की ओर चल पड़े. बहुतों के हाथों में कुदालियां थीं. वे धरती की छाती पर फैले बालू को हटाने लगे. चार-पांच घंटे की की मेहनत के बाद उन्हें रामधन की बातों की सचाई मालूम पड़ी. मुश्किल से दो-तीन फुट नीचे उपजाऊ जमीन का लंबा चौड़ा भू-भाग दिखायी पड़ रहा था. जमीन का वह टुकड़ा उनका अपना था. उनकी तकदीर थी, ऐसी तकदीर जो बाहर निकलने के लिए तैयार खड़ी थी, जो वर्षों से बालू के नीचे दबी पड़ी थी. मुंशीजी और अदालत सिंह के साथ समाज के पहरुओं ने उनके भाग्य को रेगिस्तानी बालू के नीचे दफना दिया था, वही आज मुस्कराता हुआ उनके सामने खड़ा होने के लिए आमादा था. गांववालों के दिल में खुशी का पारावार न था. उनकी आंखों की खुशियां देखकर रामधन भाई की आंखें छलछला गयीं, लेकिन अपने को संयत करता हुआ वह बोला, "भैया! अभी बहुत कठिन श्रम हम सबको मिलकर करना है. इस बालू के मैदान के नीचे दबी हुई अपनी तकदीर को बाहर निकालना है. यह काम कठिन जरूर है लेकिन मुश्किल नहीं. हम सब मिलकर इस काम को करेंगे. गेहूं, ज्वार और धान पैदा करेंगे. अपनी जमीन पर हम खेती करेंगे. जितनी जमीन से हम बालू हटा पायेंगे, उतनी ही लंबी-चौड़ी खुशियां हमें मिलेंगी. . ."

उसकी बातें पूरी भी नहीं हो पायी थीं कि अनेक आवाजें उभरीं, 'हम बालू के नीचे से अपनी जमीन निकालकर रहेंगे रामधन भाई! इसमें जितना भी समय लगेगा, हम लगायेंगे. हमारे शरीर में जब तक ताकत है, तब तक काम करते रहेंगे. आधा पेट खायेंगे, लेकिन रोज बालू को काटते रहेंगे!'

रामधन खुशी से झूमता हुआ बोला, "भाई! अगर तुम्हारे दिल में ऐसा ही हौसला बना रहा तो समझो बस्ती की सारी झोपड़ियां पक्के मकानों में बदल जायेंगी. . .आज से बस्ती के मर्द बाहर काम करने नहीं जायेंगे. वे यहां काम करेंगे. औरतें चटाइयां, दलिया आदि बुनेंगी और उन्हें बेचकर अपने घरवालों के पेट चलायेंगी."

उपस्थित लोगों ने उसकी बातों का समर्थन किया. उस समय सूरज काफी ऊंचाई पर पहुंच चुका था और उसकी रोशनी में बालुका प्रांतर चांदी की तरह चमक रहा था.

कई महीने के कठोर परिश्रम के बाद बस्तीवालों ने कोशी दियारा की उस रेगिस्तानी जमीन को उपजाऊ खेतों में बदल दिया था. वहां दूर-दूर तक गेहूं की फसल लहलहा रही थी. गेहूं की पकी हुई बालियां हवा के संग-संग हिल-डोल रही थीं. बस्ती के ऊपर छाया हुआ घटाटोप अंधेरा खत्म हो चुका था और वहां सुबह की रक्तिम लाली फैली हुई थी. उनकी खुशियां देखकर मुंशी प्यारे लाल और अदालत सिंह के चेहरे पर मुर्दनी छायी हुई थी. उनके दरवाजे के ठहाकों की अनुगूंज लबरेज उदासी में बदल गयी थी.

वर्षों बाद आज पहली बार खेतों की फसल उनकी झोपड़ियों में आनेवाली थी. इस अवसर पर बस्ती में 'मंगल मेला' का आयोजन किया गया था. 'मंगल मेला'—शहीद मंगल के नाम पर इस मेले का नाम रखा गया था. मंगल ने एक सपना देखा था, टोलेवालों की खुशहाली का सपना! यद्यपि वह अपनी जिंदगी में उस सपने को साकार नहीं कर पाया, लेकिन उसने अपने शरीर से जन्मे रामधन की देह के खून में उस सपने को भर दिया था, लगता था कि उसकी रूह दियारावाली जमीन के इर्द-गिर्द पहरेदारी करती हुई वहीं चक्कर लगाती रहती है.

सत्ती चौरा को लीप-पोतकर सजाया गया था. वहां बदलू कुम्हार द्वारा बनायी हुई मंगल की बड़ी-सी मूर्ति रखी हुई थी. गांव की सारी झोपड़ियां सजी-संवरी बिहंस रही थीं. बच्चे जिनके शरीर पर कभी नये वस्त्र नहीं चढ़े थे, आज नये-नये कपड़े पहनकर किलकारियां भर रहे थे. युवकों की कटी-छंटी कनपट्टियों से तेलू चू रहे थे. टोले की औरतें पैबंद लगी साड़ियों की जगह फूलपाड़ और छापेवाली साड़ियां पहनकर इतरा रही थीं. बूढ़ों की छातियां जुड़ा गयी थीं. वे रामधन को युग-युग जीने का आर्शीवाद दे रहे थे. उन्हें जीवन में कभी उम्मीद नहीं थी कि उनकी बस्ती में कभी खुशियां आयेंगी.

'मंगल मेला' का उद्घाटन वयोवृद्ध स्वतंत्रता सेनानी ब्रह्मचारी करनेवाले थे. उन्हें ही मंगल की मूर्ति को माला पहनानी थी और उसके बाद बस्तीवालों के साथ खेतों में जाकर अपने हाथ से गेहूं के कुछ पौधे काटने थे. ढोल, तुतरू और नगाड़े बज रहे थे. लोग-बाग नाच-गा रहे थे. उनकी खुशियां देखकर ब्रह्मचारीजी का दिल आल्हादित हो रहा था कि अचानक मुंशी प्यारे लाल और अदालत सिंह के साथ थानेदार जीप घरघराता हुआ आ पहुंचा. थानेदार ने कड़ककर कहा, "रामधन ! तुम्हें थाने चलना होगा."

"क्यों?" ब्रह्मचारीजी ने पूछा.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पुलिस को सूचना मिली है कि इसका संबंध बंगाल के उग्रवादियों के साथ है. बस्ती के और भी बहुत-से लोगों के आचरण संदिग्धपूर्ण . . ."

ब्रह्मचारीजी के कुछ बोलने से पहले रामधन भाई ने चीखकर कहा, "यह गलत है. सरासर झूठ. न तो हमारा संबंध उनके साथ है और न हम उन्हें जानते हैं. यह बात अलग है कि हम मजदूरों ने खून-पसीना एक करके बालू के गर्भ से अपनी जमीन निकाली है, जिसे मुंशीजी और अदालत सिंह बर्दाशत नहीं कर पा रहे हैं. उन्होंने जिंदगी भर हमें भूखे देखा है. हमारे भरे हुए पेट देखना उन्हें कतई पसंद नहीं है."

"जो कुछ कहना है, थाने पर चलकर कहना." थानेदार बोला.

थानेदार के सामने आकर रौबीली आवाज में ब्रह्मचारीजी ने कहा, "रामधन नहीं जायेगा, मैं चलूंगा. मुझे जेल भेज दो थानेदार. बीस वर्ष अंग्रेजों की जेल में रहा, जिंदगी के बचे हुए दिन तुम्हारी जेल में काट लूंगा. तुम अफसरों की गलत हरकतों के कारण ही समाज में नित्य सैकड़ों अपराधकर्मी पैदा हो रहे हैं."

उन्होंने मुंशीजी और अदालत सिंह की ओर देखते हुए कहा, "आप लोग भी अपनी मानसिकता में परिवर्तन लायें. अगर आप स्वयं अपने विचारों में बदलाव नहीं लायेंगे तो ये गरीब और शोषित लोग आपको सही रास्ते पर ले आयेंगे." कहकर ब्रह्मचारीजी थानेदार की जीप पर चढ़ने लगे.

रामधन चीखकर बोला, "कहां जा रहे हैं काका? इनकी नजरों में देश की खातिर की गयी आपकी कुर्बानी कोई कीमत नहीं रखती. ये खून चूसनेवाले हैं, रक्तजीवी!"

भीड़ से एक युवक ने कड़ककर कहा, "अगर दारोगा आपको या रामधन भाई को ले जायेगा तो हम खून की नदी बहा देंगे. जब तक बस्ती का एक भी आदमी जिंदा है, रामधन भाई को कोई नहीं ले जा सकता. रामधन भाई, मंगल काका की तरह नहीं हैं जिसे गोली से मार दिया जायेगा."

"हम सब रामधन भाई के साथ जायेंगे. मारो इस मुंशी के बच्चे और अदालत सिंह को. ये दोनों ही घूस देकर हमारी खुशियां छीनने के लिए थानेदार को यहां लाये हैं."

"मारो! . . .मारो!" अनगिनत आवाजें हवा में गूंजने लगीं.

ब्रह्मचारीजी भीड़ को शांत करने लगे. स्थिति बिगड़ती देखकर मुंशीजी ने कहा, "चलिए थानेदार साहब, इस बुड्ढे की शह पाकर इनके दिमाग गरम हो गये हैं. यह बुड्ढा भी उग्रवादियों से मिला हुआ लगता है. बाद में एक-एक से हिसाब चुकाया जायेगा."

थानेदार बिना कुछ बोले जीप पर सवार होकर भाग खड़ा हुआ.

बस्तीवालों का गुस्सा शांत हो चुका था. वे अपनी विजय की खुशी में ढोलक-तुतरू बजाने लगे. यह विजय रामधन की थी, ब्रह्मचारीजी की थी, बस्तीवालों की थी.

तालियों की गड़गड़ाहट के बीच ब्रह्मचारीजी द्वारा शहीद मंगल की मूर्ति को माला पहनायी गयी. बस्ती के कुछ लोग जब ब्रह्मचारीजी को माला पहनाने के लिए आगे बढ़े तो उन्होंने रोकते हुए कहा, "इसका हकदार मैं नहीं, रामधन है. इसने अपनी सूझबूझ और बुलंद हौसले की बदौलत आपकी इस वीरान बस्ती को नयी जिंदगी दी है. आजादी की लड़ाई के समय ऐसे ही गांव की कल्पना किया करते थे. अपने समाज में रामधन की तरह के मनुष्यों को देखने के सपने सजाये हुए थे. वर्षों बाद आज रामधन ने मेरी बूढ़ी हड्डियों में ताजगी ला दी है." कहकर उन्होंने अपने हाथ की माला रामधन के गले में डाल दी. उनके साथ-साथ बस्ती के लोगों ने भी रामधन को मालाएं पहनायीं. आकाश 'रामधन भाई, जिंदाबाद!' के नारों से गूंज उठा.

अपने बेटे की जय-जयकार सुनकर बुधनी का कलेजा गर्व से फूल उठा था. वह डबडबाई आंखों से अपने पति की मूर्ति को देखने लगी. उसे लगा कि उसका पति हंस रहा है. अपने बेटे रामधन की जीत की खुशी में और बस्तीवालों के चेहरे पर बिखरी अभूतपूर्व खुशियां देखकर मूर्ति हंस रही है. धीरे-धीरे उसकी आंखें फिसलती हुई सत्ती चौरा पर खिंची सिंदूर की लकीरों पर अटक गयीं. पिंडी पर दस-पंद्रह लकीरें ही थीं, लेकिन उसे लग रहा था कि उसके बेटे ने सौ साल की उम्र पा ली है और वहां अनगिनत लाल-लाल सिंदूर की लकीरें बन चुकी हैं. □

● जिला परिवहन अधिकारी, हजारी बाग (बिहार)

---

लघुकथा

## तकदीर

▣ फजल इमाम मलिक

और जूठे पत्तों पर वह नंग-धड़ंग जानवरों की तरह टूट पड़े. उन में धींगामुश्ती और रोटी के बचे हुए टुकड़ों के लिए छीना-झपटी में शिद्दत आ गयी. . .उन्हें इस तरह आपस में झगड़ते देखकर करीब से गुजरते हुए एक राहगीर के चेहरे पर नफरत के साये रेंगने लगे, 'स. . .सा. . .ले, रोटी के टुकड़ों के लिए कैसे लड़ रहे हैं. . .कम्बख्त जानवरों की तरह रोटी पर टूट रहे हैं. . .!' वह बड़बड़ाता हुआ आगे निकल गया. . .

पास की कोठी के दरबान के चेहरे पर मुस्कराहट-सी उभर आयी. . .दर्द भरी मुस्कराहट. . .फिर वह धीरे-से बोल पड़ा, "बेचारे जानवरों की तकदीर लेकर भी कहां आये हैं. . .!" और यह कहते हुए उसकी नजर कोठी के अंदर दूध पीते कुत्तों पर जाकर ठहर-सी गयी. □

● कुतुबुद्दीन लेन, दरियापुर, पटना-800004.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**तुलसीदास इधर काफी घूम रहे हैं. घूमते-घूमते आ पहुंचे दिल्ली. दिल्ली पहुंचें और सांसदों से न मिलें, यह कैसे हो सकता है भला! सो, इस बार प्रस्तुत है कुछ सात्विक अनुभवों का ब्यौरा संसद और सांसदों की मेहरबानी से . . .**

# संभवामि युगे-युगे

▣ हरिशंकर परसाई

तुलसीदास कुछ दिन दिल्ली में रम गया. मेरे मेजबान सांसद ने मेरे लिए 'समाजवाद' और 'राम-राज' खाने का काफी इंतजाम कर दिया था—मिठाई, मेवे, फल वगैरह भी ढेर सारे रख दिये थे. आगे चुनाव के लिए वह मेरी सेवा करके शायद पुण्य बटोर रहा था. उसने मुझे शायद 'फाइव स्टार' गोस्वामी समझ लिया था.

शाम को तीन-चार सांसद और आ गये. उन लोगों ने मदिरा की बोतलें खोल दीं. उन्होंने मुझसे कहा, "गुसांई-जी, यह तो देवताओं का पेय है. इंद्र सोमरस का पान करते हैं. आप दिल्ली में रम गये हैं तो यह 'रम' भी गृहण कीजिए. 'रम' के उच्चारण से ही 'राम' की ध्वनि निकलती है. आप 'रम' पियेंगे, तो रामभक्ति ही होगी—नवधा से बढ़कर दसवीं भक्ति! 'रम' कहो, चाहे 'राम' कहो, पुण्य वही मिलता है–

**तुलसी अपने राम को रीझ भजो कै खीझ,**
**खेत पड़े पै ऊगटे उलटो सीधो बीज."**

तुलसी को हंसी आयी. कहा, "दिन में मैंने आप लोगों को संसद में देखा है. तब ऐसा लगता था, जैसे आप लोग एक-एक बोतल का नशा किये हैं. कितना चिल्लाते हो. बार-बार 'वाक आउट' करते हो, घूंसेबाजी करते हो. संसद का आधा समय इसी में निकल जाता है."

वे बोले, "उसी थकान को तो इस मदिरा से मिटा रहे हैं. कल फिर वही कसरत करनी है. संसद में रोज 'ओलिंपिक' होता है."

तुलसी ने पूछा, "संसद में जो नशा होता है वह क्या सत्य का नशा होता है?"

एक ने कहा, "नहीं प्रभु, सत्य का नशा उतने जोर से नहीं चढ़ता. वह असत्य का नशा होता है. सत्ता पक्ष और विपक्ष दोनों को यह नशा होता है. कभी-कभी सत्य का नशा भी होता है. पर सत्य के लिए उतने जोर से चिल्लाते क्या आपने कभी किसी को देखा है? इतना जोर झूठ से ही पैदा होता है."

वे पी रहे थे और हल्के हो रहे थे.

तुलसीदास ने कहा, "संसद का प्रति मिनट का खर्च कई हजार रुपये होता है. यह गरीबों का देश है. गरीबों की मेहनत की कमाई से संसद चलती है क्या आपको नहीं लगता कि आप गरीबों का पैसा बरबाद कर रहे हैं?"

एक सदस्य ने उत्तेजित होकर कहा, "स्वामीजी, गरीबों का देश है, यह सुनते-सुनते हमारे कान पक गये हैं, सैंतीस सालों से यही सुन रहे हैं. गरीबों का देश है, तो क्या हम संसद को 'एंज्वॉय' नहीं करें—संसद को नहीं भोगें. आप ही ने कहा है—'**बड़े भाग मानुस तन पाया.**' तिरासी लाख योनियों में भटकने के बाद तो यह मनुष्य जीवन मिला है. इस देश में सत्तर करोड़ मनुष्य हैं. इनमें हम कुछ संसद में आये हैं, तो क्या हम संसद को भोगें भी नहीं? हम अब बूढ़े हुए. आगामी जन्म मनुष्य का थोड़े ही होगा. सूअर की योनि में जन्म ले लिया तो? सूअर संसद सदस्य थोड़े ही होते हैं."

एक सदस्य जो अच्छे 'मूड' में आ गया था, बोल पड़ा, "अरे, सूअर भी संसद सदस्य होते हैं. कितने लोग हैं जिन्हें लोग 'सूअर' कहते हैं. मगर चुनकर आ जाते हैं. माननीय हो जाते हैं. पर उनकी नस्ल तो नहीं बदलती. स्वामीजी, आप भी लीजिए थोड़ी रम. . .डाका तो नहीं डाला, चोरी तो नहीं की है, थोड़ी सी जो पी ली है! . . . अ हा हा!"

तुलसी ने कहा, "आप लोग सचमुच तपस्वी हैं. आप लोगों के तप से इंद्र का आसन डोलता होगा. उस ईर्ष्यालु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने आपका तप भंग करने के लिए रम के सिवा शायद अप्सराओं का प्रबंध भी किया है. शाम से मैं यहां सजी हुई सुंदरियां देखता हूं जो सद्गृहणी नहीं मालूम होती. वे आपका तपोभंग करने के लिए भेजी गयी इंद्र की अप्सराएं होंगी. आप लोग सावधान रहें."

वे लोग खूब हंसे. एक बोला, "आप बड़े भोले हैं गुसाईजी. वैष्णवों में रामभक्त भोले और नीरस होते हैं, कृष्ण भक्त रसिक होते हैं. अरे महाराज, कहां रहा अब वह इंद्र? अब तो हम-में से हर एक इंद्र है. वे अप्सराएं हमारी ही हैं. हम उनसे बचे-खुचे चरित्रवानों को नष्ट करते हैं, हमारे विरोधियों को. आपने तो जवानी में ही पत्नी छोड़ दी थी. कामेच्छा हो तो फोन करके एक अप्सरा बुला दें. आपको उसे भेंट नहीं देनी होगी. वह तो दूसरे देंगे."

तुलसी ने कहा, "रहने दो. एक कंचन एक कामिनी दुर्लंघ घाटी दोय. सुनो, मैं काशी में रहा हूं. काशी के जीवन के भीतर. काशी में कौन-सी लीला नहीं होती. मैं सीधा नहीं हूं. मैं सब कुछ समझता हूं. कंचन और कामिनी का चक्कर मैंने बहुत देखा समझा है. अब त्रिदोष हो गया है—कंचन, कामिनी और सत्ता!"

वे लोग काफी चढ़ चुके थे. एक ने कहा, "भैया लोगो, आखिरी बार खा लो, पी लो. यह आखिरी अधिवेशन हो सकता है. इसके बाद लोकसभा भंग हो जाये और आम चुनाव हों. तब क्या पता, कौन भगवान यहां लौटता है. और कौन अभागा नहीं लौटता. अरे भैया, अब के बिछड़े अब नहीं मिलेंगे."

वह जोर से रोने लगा. दूसरे ने उसे संभाला, "अरे, अभी तो नवंबर में हफ्ते भर का अधिवेशन और होगा. उसके बाद लोकसभा भंग होगी. हम एक बार फिर मिलेंगे."

दूसरे ने कहा, "अरे, उस 'मैडम' का कोई भरोसा है? जिसकी हम आशा करते हैं वैसा वह कतई नहीं करतीं. चौंकाती हैं. चमत्कृत करती हैं. वह कल लोकसभा भंग कर दें और चुनाव की घोषणा कर दें. फिर भैया, तुम क्यों रोते हो? तुम तो मैडम के आदमी हो."

दूसरा कांग्रेसी भी था. वह बोला, "कुछ पक्का नहीं है. अब मैडम के जिताये जीतना पक्का नहीं है. आंध्र में देख लो. फिल्म का राम यानी एन. टी. रामाराव वास्तविक अवतार होकर राजनीति में कूद पड़ा. उसने रथ के आकार की मोटर गाड़ी बनवायी 'चैतन्य रथम'. उसने कौशेय वस्त्र धारण कर लिये. तिलक कुंडल से सज गया. राम और अर्द्धनारीश्वर एक साथ हो गया. उसके लिए नारियल फूटे, उसकी आरती उतरी. उसकी 'तेलुगू देशम' पार्टी ने मैडम इंदिरा के करिश्मे को साफ कर दिया."

तुलसीदास ने कहा, "उसे नकारात्मक मत मिले. असंतोष के मत. वहां कोई सरकार नहीं टिकती थी. तो लोगों ने सोचा कि रामाराव की सरकार बनवाओ, जिसे दिल्ली भंग न करवा सके.

कांग्रेसी ने कहा, "स्वामीजी, असंतोष कहां नहीं है? मेरे परिवार में ही मुझे बहुमत नहीं मिलेगा. फिर पहली लड़ाई तो टिकट की है. संजय गांधी की पालकी ढोते-ढोते हमारे कंधों पर घाव हो गये थे. तब कहीं 1980 में टिकट मिला था. अब राजीवजी के चक्कर लगाते हैं. पर उनका स्वभाव दूसरा है. कोई कहता है—अरुण नेहरू के पास जाओ. हम तय नहीं कर पा रहे हैं कि पंजाबियों को पटायें या काश्मीरियों को कोई कहता है-'गैंग आफ फोर' है, माओत्से तुंग का. दूसरा कोई 'गैंग आफ सिक्स' कहता है. हम तो इंदिराजी के हाथ मजबूत करनेवाले सिपाही हैं. निस्वार्थ सेवक हैं."

जनता पार्टीवाले ने कहा, "अरे भैया, आपका कम से कम तय तो है कि किसके पास जाना है. हमारा तो यही तय नहीं है कि चंद्रशेखर के पास रहें या चौधरी चरणसिंह के पास चले जायें या अटलबिहारी वाजपेयी के पास जायें. हमारे चंद्रशेखर को सबने मिलकर आधा मार डाला."

तुलसीदास ने कहा, "भैया सुनो, तुम्हारे चंद्रशेखर ने कन्याकुमारी से दिल्ली तक पदयात्रा करके खुद अपना नाश किया. वे समझे थे कि अब मैं दूसरा 'लोकनायक' हो जाऊंगा और विरोध पक्ष की एकता मेरे आस-पास ही होगी. मोर्चे का नेता मैं हो जाऊंगा. बस, उनके खेमे में ही उन्हें घायल कर दिया गया. प्लास्टर चढ़ा है. बात यह है कि इस देश में दो राष्ट्रीय विकास तो चालीस सालों से घूम रहे हैं. दोनों प्रधानमंत्री रह चुके हैं. उनमें से एक इस बार शांत है. दूसरे हैं चरणसिंह जो अपने को पहले प्रधानमंत्री बनाकर आगे एकता की बात करते हैं. इनका राजयोग है. जब पैदा हुए थे, तो दाई ने देखा कि बालक के सिर पर मुकुट है. पिता ने भी देखा. ज्योतिषी बुलाये गये. ज्योतिषी ने कहा, "बालक को राजयोग है. मुकुट निकालकर गांधी टोपी लगा दो."

एक सांसद ने कहा, "अब चरणसिंह का हठ है कि सब दल, गुट और नेता मेरे लोकदल में विलीन हो जाओ. इसके बिना विपक्षी एकता नहीं हो सकती. अब बताइए स्वामीजी, विलीन होने पर चौधरी क्या देंगे, क्या पता."

तुलसीदास ने कहा, "चौधरी ठीक कहते हैं. मगरमच्छ जैसे मजबूत हैं. इतनी मोटी मजबूत चमड़ी किसी और नेता की नहीं है. तुम लोग सब उनके पेट में समा जाओ तो सुरक्षित रहोगे. जो चौधरी निगलेंगे—बड़ी मछली, बकरी, भैंस—वह पेट में ही जायेगी. उसमें से कुछ तुम लोग भी खा लेना, बहरहाल, तुम लोग किसी सिद्धांत और कार्यक्रम पर एकता स्थापित कर रहे हो न!"

उसने कहा, "बिल्कुल कट्टर-सिद्धांत है हमारा—अवसरवाद! यह गांधीवाद, समाजवाद, साम्यवाद से श्रेष्ठ है. और कार्यक्रम भी साफ-सीटें जीतकर सत्ता पर कब्जा करना और उसे भोगना. इसीलिए तो यहां से वहां भगदड़ मची है."

एक दिन टैक्सी अड्डे पर जार्ज


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फर्नांडीज टैक्सी लेते दिखे. तुससी ने पूछा, "कामरेड जार्ज, कहां जा रहे हो?"

जार्ज ने कहा, "चौधरी चरणसिंह के यहां."

तुलसीदास ने पूछा, "आ कहां से रहे हो?"

जार्ज ने कहा, "मोरारजी के घर से."

तुलसी ने पूछा, "चौधरी के यहां से कहां जाओगे?"

जार्ज ने कहा, "अटलबिहारी बाजपेयी के घर."

तुलसीदास ने कहा, "मेरे समाजवादी साथी, मोरारजी के पास से आ रहे हो, चौधरी चरणसिंह के पास जा रहे हो, फिर अटलबिहारी बाजपेयी के घर जाओगे. अरे, समाजवादी पार्टी आफिस कबसे नहीं गये?"

जार्ज ने कहा, "गोस्वामीजी आपको कोई जानकारी नहीं रहती. समाजवादी पार्टी भारत में अब नहीं है. उसे डाक्टर लोहिया अपने साथ दूसरे लोक ले गये. उनकी अंतिम इच्छा थी. हमने समाजवादी पार्टी को परलोक भेज दिया. और अब समाजवाद के विरोधियों के चक्कर लगा रहे हैं."

एक दो दिनों में दिल्ली में सन्नाटा छा गया. मालूम हुआ कि सब शीर्ष नेता कश्मीर गये हैं. वहां राज्यपाल ने मुख्यमंत्री फारुख अब्दुल्ला को पद से हटा दिया था. तो सब नेता वहां लोकतंत्र की रक्षा के लिए गये हैं. तुलसीदास ने एक मंझौले नेता से कहा, "अरे भई, राष्ट्रपति दिल्ली में, प्रधानमंत्री दिल्ली में, संसद दिल्ली में. लोकतंत्र की रक्षा यहां करते. श्रीनगर में तो वही राज्यपाल होगा जिसने लोकतंत्र की हत्या की है."

मंझौले नेता ने कहा, "बहाना है, स्वामी जी! श्रीनगर इसलिए गये हैं कि फारुख का बलिदान शायद एकता करा दे. वहां मातम के साये में एक होने की कोशिश करेंगे."

तुलसीदास श्रीनगर पहुंचा. वहां सब विपक्षी नेता थे. फारुख के मेहमान थे. एक शाम उस झील की तरफ गया. वहां बड़ी भीड़ थी. तमाशाईयों की. तुलसी ने एक तमाशाई से पूछा कि क्या बात है यहां! उसने कहा– अरे साधू जी, बड़ा दिलचस्प नजारा है. दिल्ली से जो बड़े बड़े नेता आये हैं, वे यहां कांटा डाले मछली मारने बैठे हैं. यहां मछली पकड़ना मना है.

तुलसी भीतर घुसा. देखा कि चरणसिंह, चंद्रशेखर, अटलबिहारी बहुगुणा वगैरह कांटा पानी में डाले बैठे हैं.

तुलसीदास ने कहा, "अरे यहां क्या मछली मारने आये हो?"

उन्होंने कहा, "स्वामीजी, मछली कौन मार रहा है! कांटे में चारा ही नहीं है. हम तो इसलिए कांटे डाले बैठे हैं कि शायद किसी में विपक्षी एकता फंस जाये, तो उसे निकालकर दिल्ली ले जायें."

विपक्षी एकता नहीं फंसी. नेता लोग दिल्ली लौट आये. कुछ दिन बाद आंध्र के मुख्यमंत्री एन. टी. रामाराव को भी फारुख अब्दुल्ला कर दिया गया. वे भी निकाल दिये गये. दिल्ली में शोर गूंजा, फिर लोकतंत्र की हत्या. अब तो बर्दाश्त नहीं होगा. विपक्षी एकता करके लोकतंत्र की रक्षा करनी पड़ेगी.

राम के फिल्मी अवतार रामाराव सदलबल दिल्ली आ गये. सारे विपक्षी नेता खुश थे फिर फारुख चाहे हमारी एकता न करा पाये हों, रामाराव जरूर करा देंगे. विवाह मंडप में हम चाहें एक न हों, मजार पर तो हो ही सकते हैं.

तुलसीदास ने भी राम के अवतार के दर्शन किये. वे वनवास के 'मेकप' में थे—

**तापस वेश असीम उदासी,**
**दंडक वन विचरत अविनाशी.**

कौशेय वस्त्र, खड़ाऊं, रुद्राक्ष, ललाट पर शुभ्र चंदन और लाल टीका—

**कहा कहौं छबि आप की भले**
**बने हो नाथ,**
**तुलसी मस्तक तप नवै पाखंड**
**देवहु त्याग.**

चरणसिंह, अटलबिहारी, चंद्रशेखर, जार्ज, बहुगुणा, शरद पंवार वगैरह नेता रामाराव के सामने हाथ जोड़े खड़े हुए प्रार्थना कर रहे थे, "प्रभु रामाराव, आपको अधिनायकवाद के दशरथ ने वनवास दिया है. यह हमारे लिए बहुत शुभ हुआ. आपने प्रथम अवतार में गुह, निषाद, नर, वानर, देव, रीछ, गिद्ध आदि में एकता कराके अत्याचारी रावण का नाश किया था. हम भी उतने ही भिन्न हैं, जितने लक्ष्मण और जामवंत थे. आप हममें एकता स्थापित कीजिये, ताकि हम सब 'इंदिरा कांग्रेस' की लंका जीत सकें और तानाशाही के रावण का आप वध कर सकें."

रामाराव ने आंखें बंद कीं. फिर खोलीं. हाथ अभय मुद्रा में उठाया; और बोले, "एवमस्तु!...

**पत्रिाणाय साधूनां विनाशाय च**
**दुष्कृताम्,**
**धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे**
**युगे."** ☐

## चलते-चलते

**बस स्टेशन पर एक सज्जन बस की इंतजार में खड़े थे कि एक युवक उनके पास आया और बेहद सलीके से बोला, "क्या आप मुझे बीस रुपये देंगे?"**

**"किसलिए?"**

**"जी, यदि मेरे पास बीस रुपये हो जायें तो मेरी पुस्तक प्रेस में छपने के लिए चली जाय."**

**"अच्छा! क्या नाम है तुम्हारी पुस्तक का?"**

**"जी, धन कमाने के एक सौ एक उपाय?"**

**"वाह, अजीब बात है. जब तुम धन कमाने के एक सौ एक उपाय पुस्तक लिख सकते हो तो क्यों नहीं उन्हीं में से एक उपाय का प्रयोग कर धन भी कमा लेते? मांगते क्यों फिरते हो इस तरह?"**

**"उन्हीं में से एक उपाय का तो प्रयोग कर रहा हूं, श्रीमान!"**

● वीणा श्रीवास्तव



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मानसरोवर

• गोविंद मिश्र

"डैम!"

"क्या हुआ?"

"जाने क्या. . .मैं तंग आ गयी हूं."

"किससे?"

"नौकरी से, सब कुछ से. नौकरी अच्छी नहीं लगती."

"तो दूसरी जगह तबादला करा लो. तुम्हारे तो इतने सारे दोस्त महत्वपूर्ण पदों पर हैं."

"मैं नहीं कहती किसी से."

"तो फिर? नौकरी छोड़कर तुम जैसी लड़कियां रह भी तो नहीं सकतीं. सिर्फ गृहस्थिन का जीवन बिता सकोगी तुम. हम एक खास तरीके से जिंदगी . . . मरी-मरी और महत्वपूर्ण दिखती, कुछ लोग इर्द-गिर्द मंडराने वाले, पद की प्रतिष्ठा, जिस पर थोड़ा गर्व भी महसूस होता रहे. . .इस सबके आदी हो जाते हैं. फिर मुश्किल होता है इस सबके बगैर."

"पता नहीं. . .मेरी समझ में कुछ नहीं आता. बस, कुछ अच्छा नहीं लगता. कभी-कभी सोचती हूं, नाचने का एक स्कूल खोल दूं."

"तुमने कितनी बार नाचना फिर से शुरू किया और छोड़ दिया. ऊपर से जब हम खालीपन को भरने की सोचते हैं तो ऐसा ही होता है. जीवन का रूप तो गहराइयों में उतरकर ही मिलता है और तुम सिर्फ आर-पार फैलती हो. वैसे नाचने का स्कूल . . .यह खयाल अच्छा है. नाचने से तुम्हारा लगाव भी रहा है. . .और वह तुम एक और एम. ए. करने जा रही थीं. फार्म भरा था न?"

"हां भरा था. . .पर मुझसे नहीं होता यह सब. . .इम्तहान की तैयारी-वैयारी. दोबारा एम. ए. करके क्या होगा? मैं बोर हो गयी हूं."

एकाएक वह सामने रास्ते पर दौड़ गयी, मुझे पीछे

**पिछले अंकों में आपने लेखक के शीघ्र प्रकाश्य उपन्यास 'तुम्हारी रोशनी में' के दो अंश पढ़े. प्रस्तुत अंश में पढ़िए, पश्चिमी जीवन दर्शन की ढलान पर फिसलती एक भारतीय नारी का मानसिक अंतर्द्वंद्व कि प्यार में महत्वपूर्ण शरीर होता है या व्यक्ति का मन?**

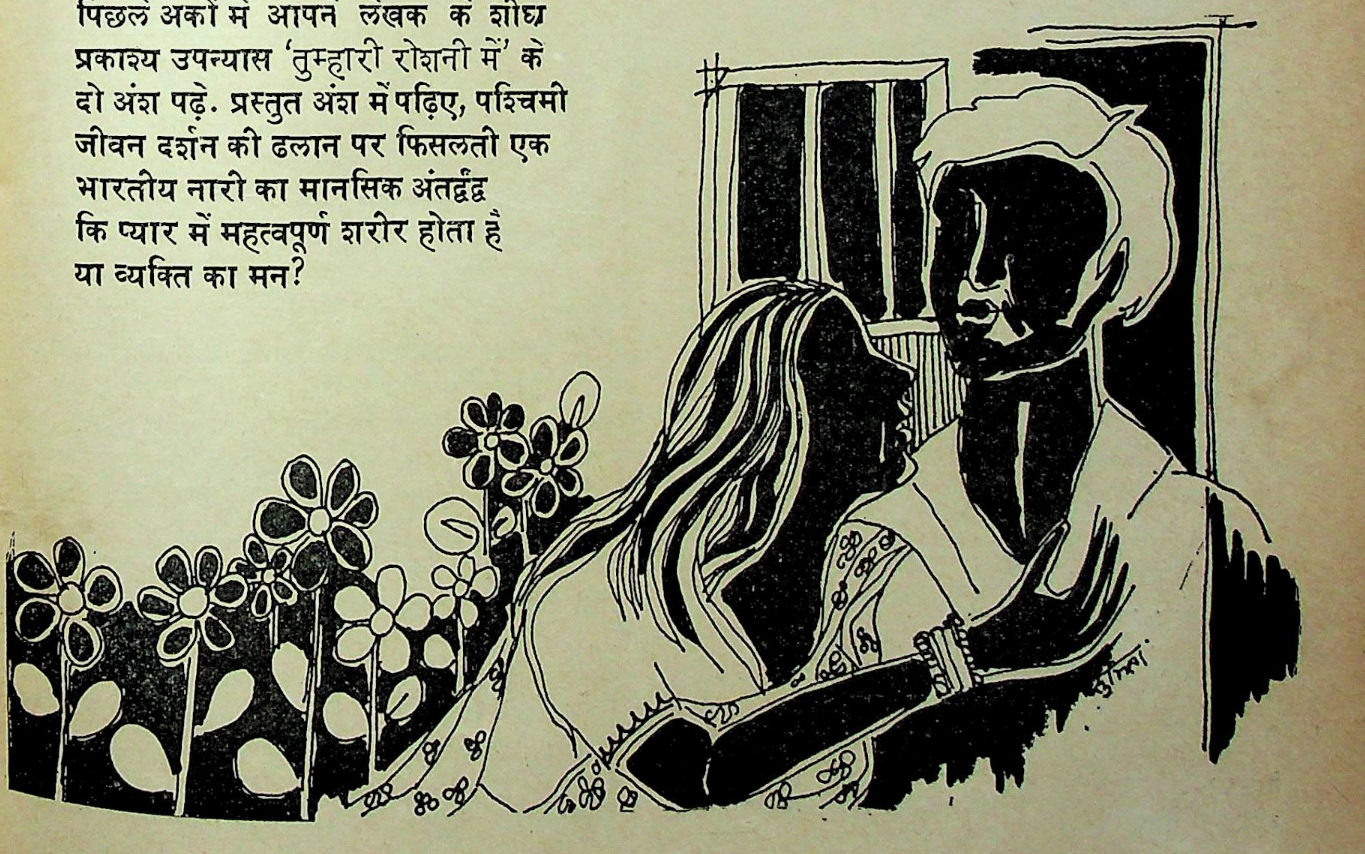



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़कर. सौ गज की दौड़ जरूर दौड़ी होगी. उस पार पहुंच-कर तेज सांसों से अपने फेफड़े भर रही थी और मुझे देख रही थी. फिर वहीं एक किनारे बैठकर मेरे पहुंचने का इंतजार करने लगी. मेरे पहुंचने पर उठ खड़ी हुई. हम फिर साथ-साथ चलने लगे.

"सुनो, तुम मेरे जिस्म के बारे में भी कभी सोचते हो?" उसने ऐसे पूछा जैसे वह एक बात कितनी देर से भीतर टकटका रही थी.

"क्यों. . .बहुत सोचता हूं. अक्सर ऐसा लगता है कि तुम्हारे शरीर का हर हिस्सा खूब मीठा होगा. कभी-कभी जोरों की इच्छा होती है कि तुम्हें तड़ातड़ चूमता जाऊं. . ."

"तो?" उसकी आंखों में चमक उतरा आयी थी.

"पशोपेश में रहता हूं कि कहीं यह शरीर की भूख ही तो नहीं. . .मैं कस्बे का हूं,जहां लड़की को छूना ही बहुत बड़ी चीज होती है. सालों लग जाते हैं उस बिंदु तक पहुंचने में. शरीर मेरे लिए बहुत आकर्षण की चीज है, इसलिए मैं कुछ ज्यादा ही सतर्क रहता हूं. . .क्योंकि मेरा विश्वास है कि शरीर पर ही नजर हो तो बाकी चीजें ओट हो जाती हैं. जैसे जीवन में पैसे को ही पकड़े रहो तो दूसरी चीजें हाथ से फिसल जाती हैं. बड़ी सुंदरता भीतर के व्यक्ति की होती है,जो बहुत ही धीरे-धीरे खुलती है. . .पर रहती भी बहुत देर तक है."

"तुम्हारा मतलब, शरीर कुछ होता ही नहीं."

"बहुत होता है, पर प्यार के साथ ही. मुझे अजीब लगता है यह सुनकर कि लोग एक दूसरे को प्यार नहीं करते, फिर भी सैक्स अच्छा-खासा कर लेते हैं. ज्यादातर पति-पत्नियों के साथ यह होता है."

कुछ हैरत में. . .कुछ याद करने की जैसी मुद्रा में वह चलती रही, "मेरा जब मन नहीं होता, मैं रमेश को दूर रखती हूं. दोनों का मन होना चाहिए. हमारी सैक्स लाइफ अच्छी है. . . बढ़िया खाना खा चुकने के बाद जैसा अक्सर लगता है, पर कभी-कभी बाद में ऐसा भी लगता है जैसे दूर हो गये हों एक दूसरे से. वैसे सैक्स को लेकर जो ये 'टैबू' हैं कि पति के अलावा किसी और से नहीं. . .यह सब बकवास है."

उसे नौकरी के क्या. . . सभी बंधन गड़ रहे थे, खुलकर बहना चाहती थी. पैंट की जेब में हाथ डाले चल रही थी, हर सांस में हवा को पीने की कोशिश करते हुए.

"तुम्हारे साथ एक पूरी रात गुजारने का सपना अक्सर देखा करता हूं. जहां शरीर, मन, आत्मा सब एकाग्र हो जायेंगे. वह अनुभव कैसा होगा. . .कितना विलक्षण, प्राणवान. . ."

वह लेटी दिखाई दे रही थी. . .एकवस्त्रा. रात के अंधेरे में चांदनी-सा उजला-उजला उसका शरीर. . .अलसाया पड़ा हुआ. . .उससे उठती हुई चंदन की सोंधी-सोंधी गंध. आंखें, होंठ. . .द्वारों के बोल अपने पंखों पर बिठा अनंतता में ले जाते हुए. मैं जो बोल रहा था, वह सुनती रही. . .मुग्ध. हम एक दरख्त के पास रुके खड़े थे. . .एक दूसरे में लीन.

"अपने जीवन की इतनी रातों में से एक तुम मुझे नहीं दे सकतीं?" वह चौंकी, खुद को झकझोर कर उसने जगाया और सामने चल पड़ी.

"हम ऐसे ही अच्छे हैं. . .चलो, साथ दौड़ लगायें."

उसने कहा और मेरी हथेली अपनी में कस मुझे करीब-करीब घसीटते हुए आगे दौड़ गयी. सामने के एक टीले को भागते-भागते ही पार किया हमने. ऊपर पहुंचकर एक दूसरे को देखते दम लेते हम थोड़ी देर खड़े रहे. फिर वहीं पड़ी एक बैंच पर बैठ गये. . .बेगनबेलिया की घनी झाड़ के नीचे दुबकी पड़ी एक हरी-हरी बैंच.

"एक 'क्रश' मारा जाये. . . ., जिंदगी बेहद बोर हो गयी है." वह बोली.

"यह क्या होता है?"

"'क्रश नहीं समझते. . .किसी से जा भिड़ना, फिर उसके साथ घूमना-फिरना. मस्ती मारना, होटलबाजी, रेस्तोरां, सिनेमा वगैरह, फटाफट थोड़ा प्यार-व्यार भी. फिर सब छोड़-कर वापस अपनी जगह."

"तो यह तो तुम अब भी कर रही हो."

"क्या कर रही हूं?"

"मतलब सैक्स वाले पक्ष को छोड़कर बाकी सब तो हो ही रहा है. . .मेरे अलावा भी कई के साथ."

"हट. . .'क्रश' कहीं इतना चलता है?"

कभी-कभी लगता है कि उसके दिमाग में कोई फॉर्मेट है, जिसे वह जीना चाहती है. . .किसी भी आदमी को उसमें बिठाकर. यही है, जो उसे चैन नहीं लेने देता. मैं उसके होते हुए किसी दूसरे संबंध की सोच नहीं पाता. उसमें ही सब कुछ मिल जाता है, उसमें ही डूबा रह सकता हूं दिनों-दिन. . . और एक वह है कि पति को प्यार करती है, कम से कम दो

**थारू लोककथा**

# शेर और राहगीर

एक जंगल में एक शेर रहा करता था. वह जंगल से होकर गुजरती राह के राहगीरों को खा जाया करता था.

एक दिन राहगीर ने बड़ी चतुराई से अपने कुछ साथियों की मदद से उसे एक बड़ी गुफा में बंद कर दिया और वे लोग बच निकले. कुछ समय बाद एक अन्य राहगीर गुजरा. शेर ने उसे आवाज लगायी और प्रार्थना की कि वह उसे बाहर निकाल दे.

राहगीर ने कहा, "यदि मैं तुम्हें बाहर निकाल दूंगा तो तुम मुझे खा जाओगे."

शेर ने भगवान की कसम खाते हुए कहा, "यदि तुम मुझे मुक्त कर दोगे तो मैं तुम्हें नहीं खाऊंगा."

मुक्त कर दिये जाने पर शेर बोला, "मैं कई दिन से भूखा रहने के कारण कमजोर हो गया हूं. ज्यादा दूर तक चल-फिर नहीं सकता. क्यों न मैं पहले तुम्हें खाकर अपनी भूख मिटा लूं."



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ खासी अंतरंगता से जी रही है, फिर भी ऋश की जरूरत महसूस करती है.

हमारी जमीन पर खपते हैं क्या ये शब्द—अफेयर, ऋश—किसी से ज़रा भिड़ना और प्यार करने लगना और फिर इत्मीनान से 'वापस' भी हो लेना, आज के शहरी प्यार का बौद्धिक खाका.

"जो मेरे साथ है, उसे 'अफेयर' कहोगी तुम?"

"नहीं."

"तो फिर क्या है यह?"

"मुझे नहीं मालूम. . .पर तुम मुझे छोड़ना नहीं. मैं गंदी लड़की हूं. . .मेरे इर्द-गिर्द हमेशा रहना."

उसकी आंखें भीगने को हो आयी थीं. उसकी उदासी देखकर मन भारी हो आया. मैंने उसके हाथ पर अपना हाथ रखा, हल्के से दबाया. चहकती फिरती लड़की, थोड़ा फ्लर्ट जैसा करती हुई. . .किसी से भी संबंध बनाती हुई. . .शायद उस पर वही सब फबता था. दिक्कत यही थी कि वह सब भी उसे पूरी तरह नहीं भर पाता था. उसका वह चहकना बाहर का था, भीतर-भीतर वह उदास थी. . .मानती हो या नहीं.

"तुम्हें चाहने वाले तो बहुत थे, लेकिन तुम्हें प्यार कभी नहीं. . .कोई तुम तक पहुंच नहीं पाया. . ."

"तुम सही लगते हो, कुछ यह भी है कि हमारी इस बीच की उम्र में छटपटाहट ही होती है. शुरुआत में तो लापरवाही होती है—सारा जीवन ही आपके सामने पड़ा होता है, लगता है, अभी नहीं तो आगे सही, पर इस उम्र में आकर हम 'डेस्पैरेट' होने लगते हैं.

बात किसी विशेष युग या उम्र की नहीं है. हर किसी को और हर उम्र में प्यार चाहिए.मुझे तो लगता है कि यही वह चीज है, जिसके लिए आदमी जीवित रहता है, जो उसे जीवित रखती है और जहां तक मेरी बात है, मुझे तो जैसे ढेर सारा प्यार चाहिए."

"तभी तो तुम दे भी पाती हो. यह अजीब है कि जो जितना प्यासा, वही दूसरे की प्यास भी बुझा पाता है. मैंने श्याम से कहा भी कि अनंत के साथ मेरे वे संबंध हैं, जिसका कभी ख्वाब देखा करती थी मैं. . ."

उसकी पतली-पतली भवें धीरे-धीरे उछल रही थीं, पानी में कूदती छोटी-छोटी मछलियों की तरह. . .जैसे कोई कली पोर-पोर चटकती हुई खिल रही हो. एक-एक करके भावनाएं उसके चेहरे पर फूटतीं तो रोशनी-सी फैल जाती.

"मैं तुम्हारी तरफ बड़ी तेजी से बढ़ रही हूं. घबराने लगी हूं. . .क्या करूंगी जब वहां पहुंच जाऊंगी, जब तुम्हारे साथ हर पल होना चाहूंगी. . .तुम्हारे साथ रहना चाहूंगी."

"मैं तो उस बिंदु पर पहले से ही पहुंच चुका हूं. इस चाह के साथ कब से रह रहा हूं."

"मुझे अभाव में रहने की आदत नहीं है, डर लगता है कि मैं कहीं तब वह सब तोड़ न डालूं, जो हम तुम दोनों ही नहीं तोड़ना चाहते. अभी तक यह मानकर चलते भी रहे हैं कि अपनी सीमाएं बनायें रखेंगे."

फ्रेम से उखड़ जाने की छरछराहट. उसके पास सब कुछ था. . .उसमें वह खुश भी थी. मैंने उससे भीतर सोयी उदासी को जगा दिया. वह महसूस करने लगी है कि कहने को सब कुछ है, लेकिन. . .मैंने ठीक नहीं किया शायद, तब क्या उसे भ्रांतियों में ही जीने देता?

वह मेरी तरफ देख रही थी. . .खामोश और उदास. कितनी छटपटाहट थी उसकी आंखों में. उसका सिर धीरे-धीरे मेरे कंधे से आ टिका. हम पर खामोशी छा गयी.सांसों की भी आवाज नहीं. . .अगले क्षण मेरी कमीज पर दो बड़े-बड़े आंसू गिरे. . .टप. . .टप. . .

उसने एक बार बताया था कि उसे रोना आसानी से नहीं आता, साल में एकाध बार ही रोती है. . .वह भी बेहद सूक्ष्म-सा और रमेश से छिपकर. . .अकेले में. मैं स्वयं आज पहली बार उसे इस तरह देख रहा था.

"रो लिया करो. इस तरह कभी-कभी. . ." मैंने उसे थपथपाया. . ."कितना हल्का लगता है अपना अहं, अपनी बौद्धिकता को ताख में रखकर, सब कुछ एक व्यक्ति को सौंप इस तरह ढह जाने में."

मेरी गोद में लुढ़का हुआ एक छोटा-सा कबूतर. . . फड़फड़ाता हुआ, जरूरत से ज्यादा समझ के कारण परेशान. वह मेरी ओर समझ के लिए ताक रही थी. मैं क्या बताता, जब मैं ही उसे पूरा-पूरा नहीं समझ पाता.

कुछ क्षणों तक वह वैसे ही रही. उधर से कोई आता दिखाई दिया तो उसने खुद को अलग किया और आंखें पोंछ लीं.

"जब कभी सोचते-सोचते थक जाती हूं तो सोचना

---

**राहगीर ने सोचा—यह तो मैंने बला मोल ले ली. उसने कहा, "चलो, हम तीन लोगों की तीन पंचायतें बैठाकर मामला सुलझाएं."**

**सबसे पहले वे एक पेड़ के पास पहुंचे. पेड़ ने कहा, "मैं मनुष्य को छाया और फल देता हूं, मगर वह मुझे काट देता है. ऐसा ही उसके लिए भी किया जाना चाहिए."**

**फिर वे एक कुत्ते के पास पहुंचे. कुत्ते ने कहा, "मनुष्य ने तब तक हमें भरपेट भोजन कराया, जब तक मैं शारीरिक दृष्टि से सक्षम था. अब मैं बूढ़ा हो गया हूं तो कोई मुझे ठीक से रोटी का टुकड़ा तक नहीं देता, ऐसे मनुष्य को कोई दया नहीं दिखायी जानी चाहिए."**

**अब वे तीसरी और आखिरी पंचायत के लिए एक गीदड़ के पास पहुंचे. गीदड़ ने कहा, वह तभी कोई निर्णय देगा, जब सारा घटनाक्रम एक बार खुद देख लेगा. तब तीनों जने गुफा के पास पहुंचे. गीदड़ ने कहा, "पहले मुझे दिखाया जाये कि शेर गुफा में किस प्रकार बंद था."**

**शेर गुफा के अंदर चला गया. जैसे ही राहगीर ने पत्थर से गुफा का मुंह बंद किया, गीदड़ ने कहा, "अब खड़े-खड़े क्या देखते हो, फौरन भाग जाओ."** □

**▣ प्रस्तुति : गंभीरसिंह पालनी**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ देती हूं. गायत्री मंत्र का जाप करने लगती हूं."

"अच्छा . . .पूजा करती हो?"

"हां रोज. . .तुम्हें विश्वास नहीं होता?"

"यह बात नहीं, सिर्फ तुम्हारे साथ जोड़ नहीं सका था."

वह अचरज से ऊपर मेरी तरफ देखती रही, फिर नजरें मेरे पार आसमान को टटोलने लगीं. वहां नीले साफ आसमान के चौखटे में एक चिड़िया हवा में टंगी हुई थी.

"वह देखो. . ." उसका चेहरा थोड़ा फैल आया, "किस आसानी से पक्षी आसमान में उतरा लेते हैं. हम जिंदगी में ऐसा क्यों नहीं कर पाते?"

"जो उड़ सकते हैं, वे ही तो हवा में उतरा सकेंगे."

उसने मेरी बात नहीं सुनी. ऊपर झूलती चिड़िया में खोयी हुई थी, उसकी ही उड़ान से लयबद्ध, मुझसे बहुत दूर. . . कहां से कहां आ पहुंचा हूं. जीव रेशा-रेशा पिघलकर कैसे दूसरे पर बहता है. . .बहने के सुख की सीधी अनुभूति मैं कर सकता हूं.

मेरी निर्भरता उस पर बढ़ गयी है. . .यह उसे चौकन्ना कर रहा है. वह यह सोचकर परेशान हो जाती है कि हमें कभी क्या-कुछ न सहना पड़े. कभी उसने कहा भी था कि तकलीफ देनेवाला संबंध उसे पसंद नहीं. शायद इसीलिए वह चीजों को 'मैनेज' करनेवाला संतुलन बराबर बनाये रखना चाहती है. उसे अब खतरा दिखाई देता है—ऐसी स्थिति आ सकती है कि हमें एक दूसरे को खोना पड़े. क्या पता ऐसे डरों की ओट असली डर उसे अपने संतुलन को खो देने का हो रहा हो. उसका मेरे बारे में सोचना—यह कि मेरा उस स्थिति में क्या होगा—दरअसल यह सोचना है कि उसके संतुलन का क्या होगा?

कैसे बेवकूफ हैं हम! जिंदगी हमारे सामने झोली खोले खड़ी है—बीन लो, जो चाहे सो. . .और हम अंगुलियां झुलस जाने के डर से सहमे खड़े हैं. हमें आग की जरूरत भी है, पर उसके बहुत पास बैठ भी नहीं सकते. प्यार की आग झेलने के लिए हमारे भीतर भी एक आग चाहिए—उम्र, लापरवाही या नासमझी की आग. उसे अपने घर पर आंच आने का डर सताने लगता है. ये जो घरौंदे हमें विरासत में मिले हैं. . .इनमें हम सुखी नहीं होते, पर इनके बगैर भी नहीं रह सकते. नयी अनुभूतियों की तलाश में हम भागते हैं, पर जो फासला हम निकल आये इस बीच, वही जैसे हमारे गले के नीचे नहीं उतरता. हर क्षण उसे लगता है जैसे हम बहुत दूर निकल आये हैं. वह डरकर लौटती है. बार-बार. नतीजा खिलौने वाले बंदर की तरह हम ऊपर उचाक लगाते है, पर फिर वापस आ गिरते हैं, अपनी जगह.

वह सिर्फ देती है. . .लेती हुई कम दिखाई देती है. मांग तो कुछ सकती ही नहीं. जैसे प्यार करने की कूवत सबको नहीं मिली होती, वैसे क्या इसे भी नहीं? प्यार में मांगना भी उतना ही है, जितना देना.

तार्किक, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण उसके व्यवहार का, उसका. . .काफी सही कर लेता हूं मैं, फिर भी यह वह नहीं होती, जो मेरे अतंस में उतरती है. . .भावनाओं की सीढ़ी-दर-सीढ़ी. उसके ये दो रूप अलग-अलग जा पड़ते हैं और तब मुझे लगता है, मेरे इस तमाम तार्किक विश्लेषण में, वह कहीं खो गयी या इस सारे आलवाल के बीच कहीं है वह, जो वह सचमुच है. घंटों मैं गहराइयों में डूबा होता हूं इन दिनों. उसका रूप जैसे पिघलकर सारे वातावरण में फैल गया है. वह हवा में है और हर सांस में मैं उसे पीता हूं. आसमान से बरसती चांदनी की नम सफेदी-सा अपनत्व मुझे लपेटे रहता है. खुशबू... उसकी गर्दन की छांस में बराबर होने का एहसास हर पल भिगोये रखता है. यह सब उससे भी अधिक सुंदर है. उसके नाक-नक्श याद करने में मेहनत करनी पड़ती है. . .पर वह हर पल साथ है. प्यार शायद यही होता है. . .जब दूसरे का श्रेष्ठ हम तक आता है, शरीर को बहुत पीछे छोड़कर. उसके शरीर को हल्के से छूकर ही अब मैं इस श्रेष्ठ में नहा लेता हूं. जीवन कितना मीठा है. चारों तरफ मिठास. . .आधे चांद के इर्द-गिर्द वह पीली-पीली गोलाई, ठंडक. . . .इस लड़की की खूबसूरती का उत्स शायद वही है. ☐

**—अगले अंक में चौथा और अंतिम अंश—संजोग-वियोग—**

**सोवियत लघुकथा**

## मनःस्थिति

**• सुखोमिलिस्की**

**मिकोला और सार्गेइका स्कूल की छुट्टी के बाद घर लौट रहे थे. स्कूल में टीचर ने सार्गेइका से जो प्रश्न पूछे थे, उनका उसने सही जवाब दिया था और सबसे ज्यादा अंक पाने पर शाबासी भी पायी थी, जबकि मिकोला सही जवाब न दे पाने पर कम अंकों और डांट का भागीदार बना था.**

**यह दिन सुंदर बसंत का दिन था. सूरज पूरी तेजी के साथ चमक रहा था और मिकोला मुंह फुलाये उदास चला जा रहा था.**

**दायीं ओर से उड़कर आते हुए बादल को देखकर सार्गेइका चहका, "आह, कितना सुंदर बादल है, बिल्कुल सफेद गुलाब की तरह. कितनी कोमल और नाजुक पंखुड़ियां हैं इसकी."**

**मिकोला काफी देर तक बादल को घूरता रहा और फिर धीरे से बोला, "कहां हैं कोमल पंखुड़ियां. . . कहां है सुंदर सफेद गुलाब. . .मुझे तो वह एक भेड़िए जैसा दिखाई दे रहा है. . .वो देखो. . .उसका सिर कितना भयानक लग रहा है!. . .अरे. . .अरे. . .वह मुंह खोलने ही वाला है!"**

**एक दूसरे की कल्पनाएं न समझते हुए दोनों आपस में एक दूसरे का मुंह देखते रहे गये.** ☐



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

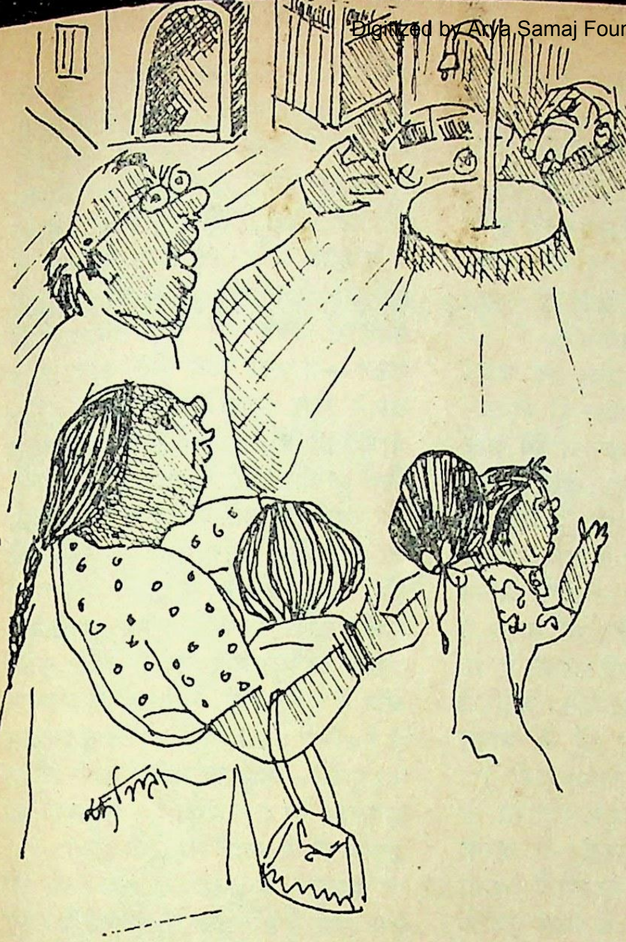

मथुरादास की डायरी

मथुरादास के साथ दिक्कत यह है कि जब-तब अपनी औकात भूल जाते हैं. . .अब देखिए न इस बार अपनी प्रगति का ढोल पीटने पर आमादा हैं. . .

# मथुरादास-धनीराम संयुक्त इंपाला अभियान

▣ मथुरादास

हरिशंकर परसाई की जैसी हिटलिस्ट बनाये बिना छोटा-मोटा लेखन करके जीविका चलाने वाले मथुरादास ने इधर अचानक तरक्की कर ली. एक सिनेमाघर से बीवी-बच्चे लादे लौटते मथुरादास के इशारे पर जब कोई बस नहीं रुकी तो स्कूटरवालों को रुकवाने लगे. स्कूटरवाले या तो परिवार से भड़क जाते थे या मल्कागंज जैसी जगह जाने से. हम न परिवार छोड़ सकते थे न मल्कागंज अतः स्कूटर-वालों को छोड़ते रहे.

बीच-बीच में दो-एक टैक्सीवाले जरूर ठिठके लेकिन हमने उनकी तरफ से निगाह हटाकर ऐसी मुद्रा बना ली गोया हम पैदा ही आसफअली रोड के चौराहे पर खड़े रहने के लिए हुए थे.

जब देर थोड़ी ज्यादा हुई तो स्कूटर-वालों ने रुकना भी बंद कर दिया.

बस ठीक उसी समय हमारी प्रगति हो गयी. भीष्म साहनी वाली नहीं, सचमुच की प्रगति, सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी प्रगति.

एक बहुत लंबी, चमकीली-सी मोटर रुकी और उसको चलानेवाले ने पूछा, "कहां जाना है?"

"जी, अरे आप क्यों तकलीफ करते हैं, हमें बस यहीं मल्कागंज तक जाना है. ये टैक्सीवाले कंबख्त बत्तमीज हो गये हैं." मथुरादास ने जवाब दिया और बड़ी-सी मोटर कार सामने देखकर तत्काल अपनी गरीबी की रेखा बस से खिसकाकर टैक्सी के पास कर ली.

कारवाला शायद हमारा बहाना समझ गया: बोला, "सब्जीमंडी चौराहे तक अगर आप लोग चलना चाहें तो छोड़ दूं. मैं उधर से अलीपुर रोड जाऊंगा."

हमारे परिवार में से सबने सबकी तरफ देखा और इससे पहले कि सामने खड़ी उदार सुविधा आगे बढ़ जाये हमने एहसान-सा करते हुए कहा, "आपको नाहक असुविधा होगी साहब. . ." लेकिन फिर भी हम मोटरकार की तरफ बढ़ लिए.

बस हमारी प्रगति हो गयी.

कनाटप्लेस से पुलबंगश तक मथुरा-दास की प्रगति की जो यात्रा है उसका ब्यौरा पाठकों को उत्साह देगा.

मोटर की मुलायम मखमली गद्दी में धंसते हुए हमने कहा, "श्रीमान, मारुती गाड़ी होती उम्दा है."

"यह गाड़ी मारुती नहीं है, इंपाला है." चलानेवाले ने कहा.

हमारी गरीबी की रेखा यह नाम सुनते ही सीधे ऊपर की ओर भागी. कनाट-प्लेस से पुलबंगश तक 'सेठ धनीराम-मथुरादास संयुक्त इंपाला अभियान' में बड़ी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियां हुईं. मथुरादास साईकिल पर चढ़ते हैं. किसी जमाने में नेवाड़वाले पलंग और छोटे से रेडियोसेट के साथ यह साईकिल उन्हें दहेज में मिली थी. इस साईकिल का पंजर कई बार दुर्घटनाग्रस्त हुआ था. खैरातीराम वेल्डर ने उसमें कई पीतल के जोड़ लगा रखे थे.

इस साईकिल पर मथुरादास ने मोटर साईकिलवाला एक कैरियर जुड़वा लिया था और बीच के डंडे पर एक छोटी गद्दी बच्चे के बैठने के लिए और फिट करा ली थी. हैंडिल के आगे एक टोकरी थी बांस की और कैरियर के बगल में कैनवस का एक झोला. इस तरह वह साईकिल लियोनार्डो द-विंची के अंतरिक्षयान का नया अनु-संधान लगती थी.

अगर मथुरादास के पास एक अपोलो होता तो यह अद्भुत यंत्र वे इनसेट की



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह आसमान में प्रक्षेपित (या प्रक्षिप्त?) कर सकते थे. इस यंत्र को अंतरिक्ष में देखकर रूस और अमरीका के अंतरिक्ष वैज्ञानिक चकरा जाते.

... खैर मथुरादास के पास भी अपोलो नहीं था पर यह विचित्र साइकिल थी जैसे भारत के पास इन्सैट था लेकिन अपोलो नहीं था.

थोड़ी तरक्की करनी थी तब हमने अपनी साइकिल अपोलो से लटका दी थी और वह आज भी वहां से हमको मौसम बताती रहती है. हमने इतनी प्रगति की कि अब हम तुरंत बता सकते हैं कि भुवनेश्वर के पास तूफान आने वाला है.

अब आगे मौसम कार्यालय जिलाधिकारी को फोन करके यह बताने की कोशिश करेगा कि तूफान आ रहा है पर फोन बजेगा जरूर. सुनाई किसी को कुछ नहीं पड़ेगा. राहत का जिम्मेदार अतिरिक्त जिलाधिकारी राहत कार्य वाली मोटर पर अपने बेटे का दहेज लदवाने गया होगा और भोजन के पैकेट कटक के बजाय दिल्ली में खाये जा रहे होंगे. पर हमारी साइकिल तो अंतरिक्ष में है और वह मौसम बिल्कुल ठीक बता रही है.

अब हमने इन्सेट वाली तरक्की से भी ज्यादा आगे बढ़ने का फैसला किया. आखिर अंतरिक्ष में यात्रा का मजा लेने का हक सिर्फ अमरीका और रूस को ही क्यों हो? तीसरी दुनिया का नेता भारत अपने आदमी अंतरिक्ष पर क्यों न भेजे?

इसी तर्क पर दहेज की साइकिल वाले मथुरादास ने तरक्की कर डाली मथुरादास इंपाला पर क्यों नहीं चढ़ सकते? इंपाला सिर्फ लाला धनीराम क्यों चलाये? तो जनाब कनाट प्लेस से पुलबंगश तक मथुरादास धनीराम इंपाला यात्रा हुई.

रूस सोल्युत 76 बहुत दिन से अंतरिक्ष में ठंडा रहा था. उसमें कुछ रूसी बहुत दिन से सवारी करने का आनंद ले रहे थे. हमने कहा वह आनंद हम भी लेंगे. सोल्युत में रूसी ही क्यों बैठे? हमें भी प्रगति करने का अधिकार है.

इंपाला पर बहुत दिन से धनीराम सवार हो रहा था. उस दिन मथुरादास भी सवार ही गये. उधर सोल्युत में रूसियों ने राकेश शर्मा को बैठा लिया.

रूस ने एक राकेट छोड़कर अपने यात्रियों के साथ राकेश शर्मा को सोल्युत में भेजा तो हमने घोषणा की—यह भारत-रूस संयुक्त अभियान है.

इस घोषणा से पाकिस्तान जरूर घबरायेगा. श्रीलंका चिंतित हो जायेगा. बंगला देश के छक्के छूट जायेंगे और एन. टी. रामराव बिना परसाई की हिटलिस्ट में आये ही धाराशायी हो जायेंगे. भारत-रूस संयुक्त अंतरिक्ष अभियान से लगेगा सोल्युत भारत ने भेज रखा था. राकेट भी भारत ने ही छोड़ा. लिफ्ट रूसियों को भी दे दी. बेचारे रूसी बहुत दिन से अंतरिक्ष यात्रा का सपना देख रहे थे भारत सहयोग न देता तो सपना कभी पूरा न होता. भारत ने तो यूरी गगारिन के साथ भी उदारता बरती थी वरना हमारा कोई भी सदाचारी बाबा उसको असफल करने के लिए एक के बाद दूसरा आचमन करना गैर जरूरी समझता. तो जब-वह भारत-रूस संयुक्त अभियान माना जा सकता है तो मथुरादास द्वारा धनीराम की इंपाला में सवारी भी 'मथुरादास धनीराम इंपाला यात्रा' मानी जायगी.

राकेश शर्मा से भारत के बुद्धिजीवी पत्रकारों ने बातचीत की. यह बड़ी योग्यतापूर्ण बातचीत थी. पत्रकार ने पूछा, "राकेश शर्माजी आपने आज दिन कैसे बिताया? नाश्ता कैसे किया, क्या खाया?"

पत्रकार ने यह सवाल रूसियों से क्यों नहीं किया? पत्रकार जानता है कि दूतावास में गोरा आदमी क्या खाता होगा. वह सिर्फ इस बात की जिज्ञासा करता है कि दूतावास पत्रकारों को क्या खिलायेगा!

मथुरादास सुबह दाल-रोटी और चटनी खाकर दफ्तर जाते हैं. दोपहर को मौसम के अनुसार मूली या ककड़ी खाते हैं. शाम को भुने चने और चाय. या सिर्फ चाय. ऐयाशी हुई तो चार चम्मच दालमोठ फांक ली. पत्रकार को यह भी मालूम होता है कि इस मुल्क में बहुत से मथुरादास ऐसे हैं जो दिन भर तसले में चूनागारा ढोते हैं और रात को वही तसला उलटकर मोटी-सी रोटी सेंकते हैं और नमक की डली के साथ खाकर ईंटगारे वाले चहबच्चे में इकट्ठा पानी चुल्लू से पी लेते हैं. पत्रकार उनसे भी यह सवाल नहीं करते—आपका दिन कैसे बीता और आपने क्या खाया? पत्रकारों ने बुद्धिमानी का प्रदर्शन करते हुए यह सवाल सिर्फ राकेश शर्मा से पूछा.

मथुरादास भी धनीराम की इंपाला पर चढ़ लिए और पुलबंगश तक चढ़े रहे. अब वे अपनी एक भेंटवार्ता कन्हैयालाल नंदन के साथ छपवायेंगे. उसमें कन्हैयालाल नंदन उनसे पूछेंगे और वे जवाब देंगे. नंदन अच्छे पत्रकार हैं इसलिए खाने-पीने का सवाल छोड़ कर पूछेंगे—मथुरादास-धनीराम संयुक्त इंपाला यात्रा पंजाब समस्या को हल करने में बहुत सहायक होगी.

पत्रकार कन्हैयालाल नंदन हों तो हम इसी सुपरिणाम की उम्मीद करते हैं. पत्रकार अगर रघुवीर सहाय होते तो जरूर पूछते, "मथुरादासजी, जब आप इंपाला से नीचे आये तो क्या आपने अपने को भूखों की भीड़ से घिरा हुआ नहीं पाया?"

आदमी मोटर पर हो तो सब बहुत सुहाना लगता है. सब्जीवाले की चीख, रिक्शेवाले का पसीना और झल्लीवाले की खांसी से आप अपने आपको बचा लेते हैं. सिपाही भी उस वक्त आपको रास्ता देने के लिए पंचर छोड़ने वाले मटरू को डंडे मारकर किनारे हटा देता है. शोर-शराबा, नारे-हड़ताल, भूख-बेरोजगारी, बीमारी-बेहाली कहां है? मोटर पर चढ़े हो तो कहीं नहीं होती. सब प्रगति कर रहा होता है. मोटर इंपाला हो और वातानुकूलित हो तो धूल, बदबू, गंदगी और सड़क में भी वातावरण बड़ा सुहावना बना रहता है. आदमी सोल्युत में हो तब तो देश और भी बढ़िया लगता है.

तो भाई मथुरादास ने प्रगति कर ली है. अब उनकी प्रेस कांफ्रेंस की जिम्मेदारी 'सारिका' संपादक पर है. □



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# खंडहर पर मंडराती चीलें

• सावित्री परमार

चौधरी रामदीन की गृहस्थी यों देखने में ठीक ही थी. न बहुत उड़ाने को था, न बहुत जोड़ने को. बस जैसे-तैसे गांठ में इज्जत बांधे जी रहे थे. मन में इसी से संतोष पांव फैलाये हुलसकर पसरा रहता था.

उनकी पत्नी पार्वती थी सरलता की मूर्ति. जैसा मिला, खा-पहन लिया. परंतु मन के बहुत भीतर दुनिया के थोड़े-बहुत रंग-ढंग पाने-अपनाने की हुड़क जरूर रहती थी. तभी तो मोटा-झोटा जो भी मिलता कपड़ा-भोजन, उसको ही छांट-तराशकर नया रूप देकर मन की हौंस थोड़ी पूरी कर लेती थी. आदमी का सहूर-सलीके से रहना-जीना उनकी नजर में जरूरी था.

सब कुछ सहन हो जाय, लेकिन यह एक लालच जबर्दस्त दिल पर कब्जा किये था कि उनका इकलौता बेटा किशन गांव-कस्बे में रहकर कहीं जिंदगी भर बैलों की पूंछ ही उमेठता न रह जाये? जी ड़ुड़कता रहता था कि वह पढ़-लिखकर इंगलिस्तानी बोली सीखकर किसी बड़े शहर में, ऊंची-सी

**गांव-कस्बे में बसे किसान परिवार हर दुख-तकलीफ झेलकर भी अपनी संतान को शहर भेजकर ऊंची से ऊंची शिक्षा दिलाते हैं... मगर प्रतिफल में वे स्वयं क्या पाते हैं—उपेक्षा! लांछन! असुरक्षित भविष्य! एकाकी बुढ़ापा! अपनी ही औलाद की नजर में बौना होता अपना वजूद! ... या और भी कुछ?...**

कुर्सी लेकर एक बड़ा आदमी बने और हर महीने मोटी रकम लाये. उसका जंगले-खिड़कियों से भरा घर हो, नौकर हों, हुर्र-फुर्र दौड़नेवाली गाड़ी हो और शहर के फैशन-लिबास में जब कभी गांव आये, तो सब उसे देखकर हैरानी से वाह-वाह कर उठें.

बात जब मन के अलाव में खूब पक गई, तो एक दिन चौधरी जी के सामने उन्होंने साफ-साफ शब्दों में कह दिया, "देखो जी किसुना के बापू ! सुन लो गिरह बांधकर, चाहे घर का छप्पर-पिटार सब बिक जाये, लेकिन मैं किशन को शहर भेजकर पढ़वाऊंगी. वह अपनी जिंदगानी यहां ढूहों-टीलों में नहीं खपायेगा. क्या कहते हो?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या कहते चौधरी जी! यों ही पीठ मोड़े चिलम ताजा करते रहे. उनके विचार ही दूसरी तरह के थे. अपना उनका विश्वास था कि घर का कारोबार, चाहे छोटा हो या बड़ा, इज्जत और बरक्कत उसी में रहती है. बहुतेरे देखे हैं उन्होंने शहर में धूल फांकते.

लेकिन पार्वती की साध को हजारों उपदेश-उदाहरण भी टस से मस नहीं कर सके.

आखिर निर्णय की घड़ी आ ही गयी. किशन ने मिडिल पास किया, तो पूरे गांव में बूंदी के लड्डू-बताशे बांटे और जब दसवीं पास की ऊंचे नंबरों में, तब तो पार्वती खुशी से बहक उठीं. गांव समेत आसपास के रिश्तेदार भी बुलाये, जिमाये. दो दिन तक अखंड कीर्तन और कथा-हवन चला. घर में कहां था इतना जुड़ा हुआ? कर्ज हो गया बनी सिह महाजन का. बहन-बेटियों को विदा करने में क्या हुआ अगर उन्हें अपनी हंसुली को औने-पौने दामों में गिरवी रखना पड़ा. अरे, बेटा जब ऐसे ही पढ़ता जायेगा, नौकरी दमदार पा लेगा, तो जाने कितनी हंसुलियां लाकर रख देगा!

चखचख फिर शुरू हो गई. किशन को शहर कैसे भेजें? चौधरी जी कह रहे थे कि पढ़ाई अब बंद. कहां से उठेगा उनके उमर ढले कंधों पर यह बोझ? पहले ही कर्ज हो गया है ताजा. पुराना तो चल ही रहा है. मुझे पता है कि शहर की पढ़ाई और पहाड़ की चढ़ाई दम फुला डालती है. कम है क्या! कथा-रामायण बांच लो. हिसाब-किताब रख लो और खेती सुधारो. लेकिन पार्वती ने तो घर में कलह का पहाड़ खड़ा कर दिया था. तीन बार कसम उठा ली थी कि जब तक चौधरी जी लड़के को भेजने का हलफ उठाकर वायदा नहीं करेंगे, वह अन्न-पानी नहीं लेंगी.

"मत लो, देखें कौन ससुर मरता है!" चौधरी जी हाथी से चिंघाड़े थे.

पर कहां चली चौधरी जी की बात! दहाड़ों का असर; जूं भी नहीं रेंगी पार्वती के कानों पर. जैसा हमेशा होता रहा, वही इस बार भी हुआ. एक दिन पूरा बिना अन्न-जल निकल गया. फिर कहां बर्दाश्त! अपने हाथों से थाली लगाकर जा बैठे सामने. देखकर पार्वती की पुतलियों में जुगनू आंख-मिचौनी कर उठे. "लो परमेसुरी, दाना-पानी पेट में डालो. मैं हारा."

फिर तो चौधरी जी का महीनों तक एक पांव इधर गांव में और दूसरा शहर में चक्कर काटता रहा. किशन के दाखिले ने उनकी रीढ़ टेढ़ी कर दी. खैर, बेटा जैसे-तैसे शहर के कालेज में भर्ती हो गया. मना करने पर भी पार्वती पूरे गांव में घर-घर जाकर इमरती बांट आयीं.

रुपये-पैसे की तंगी शुरू हो गई. खुला हाथ बंद हो गया. हर समय गांठ-थेगली लगाकर कटौतियों का चक्कर चल पड़ा. शीतल जी के चेहरे से तो क्या, उनकी छाया से भी चौधरी जी को नफरत हो गई. बाद में उन्हें पता लगा कि यह मुड़कुच आदमी किशन के दाखिले के समय उनके हजारों दूसरों के नाम पर लेकर खुद डकार गया था. वे बात पी गये. किसी तरह एक जून खाकर, मोटा-झोटा पहनकर, जमीन के टुकड़े बेचकर बेटे की कालेज की पढ़ाई पार लगाई. कितनी मेहनत, चिंता, कितने दुख और कैसी गरीबी झेली, वही जानते थे! जब भी लड़के ने कुछ मंगाया वही भेजा. छुट्टियों में जब भी किशन घर आता, उसे अच्छा खिला-पिलाकर, कपड़े-लत्ते बनवाकर विदा करते और बड़ी होशियारी से अपने दुखों पर पर्दा डालते रहते.

दिन काटते-खींचते गुजरे. बेटा पढ़-लिख गया. लायक बेटा आसपास के इलाकों में नामी हो उठा. सभी की लार टपकने लगी कि चौधरी से संबंध जुटा लें, तो क्या बुरा है? रिश्ते लेकर लोग आने लगे. हर समय द्वार की सांकल बजने लगी. पार्वती की मंशा यहां भी आगे ही रही. उन्होंने पक्की दलील बिछा दी सामने, "कुछ मुट्ठी भर अकल भी है या नहीं! सोचो, जब बेटा चार किताब पढ़के देसी-बिदेसी पढ़ाई सीखा है, तो सीधी-साधी गांव की गंवारू लड़की कैसे बांध दें उसके पल्लू से! चलेगा उसका काम-नाम? चार बड़े आदमियों में उठे-बैठेगा, सलीकेदार घरों में जायेगा, तब उसके साथ घूमने-फिरने वाली दुल्हन में कुछ तो सहूर होना चाहिए कि नहीं? अरे, हमारी बात क्यों घसीटते हो बीच में? यहां तो गोबर-कूड़ा, कूटना-पीसना और गाय-गोरू में उमर खिसक गयी, पर बेटवा की बात और है! किशन जहां चाहेगा, जैसी लड़की पसंद करेगा, रिश्ता वहीं होगा. मत लगाओ फालतू किसी को मुंह, समझ लो बस!"

बेटे ने पेंग बढ़ाई कि अभी तीन साल की पढ़ाई का कोर्स और करेगा आगे. चौधरी जी का मुंह फटा रह गया. "नहीं, नहीं, अब कमर एकदम टूट गई है. हमसे गाड़ी नहीं खिंचेगी तेरी. चोटी तक पढ़ लिया. ढूंढ अब कोई रोजगार."

"आप समझते क्यों नहीं बापू! एम. एस. सी. करने से क्या होता है? शहर में हजारों फिरते हैं. मुझे प्रोफेसर साहब ने सलाह दी है कि मैं पी-एच. डी. कर लूं तो ठीक रहेगा."

"तेरे प्रोफेसर को क्या पता कि हमारी हालत क्या है? रस्सी का फंदा डाल पीपल पर लटकने की देर रह गई है. एक बार सुन या हजार बार, तीन साल तो क्या, तीन महीने भी पढ़ाने की ताकत मुझमें नहीं है. बूता नहीं बचा है मेरा..." चौधरी जी कहकर तीर से सन्ना उठे. लड़के ने मां की तरफ देखा. वहां भी अंधड़भरा सपाट मैदान-सा चेहरा दिखाई दिया. पार्वती इस बार कुछ नहीं बोलीं. चुपचाप दाल बीनती रहीं सिर झुकाये. क्या कहतीं? उनकी आंखें बंद तो थी नहीं? घर की और चौधरी जी की हालत से जानकार थीं. कितने दुख, कैसी दरिद्रता इस पढ़ाई पर उन दोनों ने उठाई है! ठीक तो रो रहे हैं बेचारे, क्या खाल बेचकर पढ़ायें!

मां की चुप्पी देखकर किशन समझ गया कि इधर से तो कुछ मिलना है नहीं. नौकरी तलाश करनी ही पड़ेगी. वह भारी मन से बिना नाश्ता-पानी किए सुबह की मोटर से शहर चला गया. मन तो मां-बाप दोनों का बहुत कटा पर करते क्या? चलो जी, ठीक ही रही. मर्दमानस है, पैरों पर



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## विजय तेंदुलकर कहते हैं...

मुझे लगता है कि नाटक का तंत्र हर लेखक को खुद निश्चित करना पड़ता है. नाट्य-तंत्र के नियमों से मार्गदर्शन होगा, लेकिन ऐसा नहीं कि उनके पालन से ही अच्छा नाटक लिखा जा सकता है. विश्व के बहुत से अच्छे नाटक तो इन नियमों का अपवाद ही साबित होंगे. नाटक का माध्यम खून में उतर जाना चाहिए, संज्ञा पर उसकी छाप उठनी चाहिए—तभी कोई लेखक अच्छा नाटक लिख सकता है. जिंदगी में एक अच्छा नाटक लिखने में कामयाब होना ही बहुत कुछ देता है, क्योंकि विविध माध्यमों से खुद को आविष्कृत कर देखने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि नाटक सबसे कठिन माध्यम है. बहुत बार लेखक जिसे अपना 'अच्छी तरह से लिखा गया नाटक' समझता है वह सच में अच्छा साबित हुआ, तो नाटक नहीं होता और वह 'नाटक' साबित हुआ, तो अच्छा नहीं होता. □

अपने बल जब तक खड़ा नहीं होगा, तब तक पहाड़-सी जिंदगी कैसे काटेगा? मां-बाप कितने दिन बैठे रहेंगे! फिर भी मन में सुइयां-सी चुभती रहीं दोनों के.

एक महीने बाद किशन की चिट्ठी उन्हें मिली कि एक प्राईवेट फर्म में उसे बड़ी अच्छी जगह मिल गई है. यह भी साथ में लिखा कि यहां हमारी ही बिरादरी के एक अच्छे खानदानी सज्जन हैं, जो इसी फर्म में ऊंची पोस्ट पर मुलाजिम हैं, इनकी एक लड़की है, जो खूबसूरत होने के साथ ही खूब पढ़ी-लिखी भी है. मुझे यह लड़की पसंद आ गई है. मैं चाहता भी यही हूं कि इसी तरह की कोई लड़की मिले. इस परिवार से मुझे बड़ा स्नेह मिल रहा है. इन लोगों की बातचीत-व्यवहार से लग रहा है कि मन ही मन इन्होंने अपनी बेटी के लिये शायद मुझे पसंद कर लिया है. इसी परिवार के कारण मेरे रहने-खाने की अच्छी व्यवस्था इधर हो गई है. मैं चाहता हूं कि आप और अम्मा यहां आकर इन लोगों से बात कर लें...

चिट्ठी पढ़ते ही दोनों भौंचक्के-से रह गये. पार्वती ऐंठी जेवड़ी की तरह अकड़ गयी...

कहीं से चौधरी जी का हिया भी छिल गया था चिट्ठी से, लेकिन फीकी हंसी चेहरे पर लाकर रह गये.

वक्त नहीं मिला फिर सोचने-समझने का चौधरी जी को. सगाई, टीका और ब्याह चट-पट निपटाने पड़े. हफ्ते भीतर तो बहू भी आ गयी. मन हर तरह से कुंद रहा. सारा कुछ कर्ज लेकर हुआ. चौधरी जी ने पहले ही पढ़ाई पर खींच-भर कर्ज ले रखा था. जमीन-जेवर अलग गिरवी पड़े थे. ब्याज ही खाये जा रहा था, असल मूलधन की तो अभी सुध भी नहीं थी.

एक-दो बार तो बेटा बहू को जबर्दस्ती गांव में दो-तीन दिन के लिये खींच लाया था, पर अब तो पूरे पांच वर्ष हो गये थे, हारी-बीमारी में आये न तीज-त्योहार पर. पैसे भी नहीं भेज रहा था.

"सो गये क्या?"

चौधरी जी को कैसी नींद? पड़े-पड़े यों ही जोड़-बाकी लगा रहे थे. पार्वती की आवाज में ताने नहीं अपनेपन की गर्मी का अहसास उन्हें हुआ. जब से किशन की नौकरी लगी, ब्याह हुआ, तब से पार्वती का स्वभाव अब ततैया मिर्च जैसा नहीं रहा था. न बोली-ठोली में जंगली हुमक बची थी. कोई जिद भी नहीं. उन्होंने करवट बदलकर पूछा, "क्या सोया दीख रहा हूं तुम्हें? ऐसी जल्दी अब कहां नींद आती है मुझे? क्या चाह रही हो कहना?" न चाहते हुए भी लंबी सांस उनके मुंह से निकल ही गयी, जिसे पार्वती ने सहज ही ताड़ लिया. छाती पर मूसल बज उठे. "पूछ रही हूं कि सर्दी लग रही है क्या! ये दोहर ओढ लो. दीवाली सिर पर है, समझो सर्दी आ गयी. मुझे भी आज ठंडी फुरफुरी-सी छूट रही है. दोहर डालो देह पर." चौधरी के लाख मना करने पर भी उन्होंने कई वर्ष की पुरानी, घिसी-घिसाई दोहर उनके ऊपर डालकर आसपास अच्छी तरह से दबा दी. गुनगुनाहट मिलते ही चौधरी जी के पांव सीधे हो गये. आंखों में भूला-बिसरा नेह आकर गुलाबी डोरे खींचने लगा. पार्वती के सिर पर हाथ रखकर बोले, "तुम भी तो कोई चौतई अपने पर पटक लो. फुरफुरी दूर हो जायेगी. अब की किशन आयेगा, तब उससे कहकर तुम्हें एक गरम चादरा और पूरी बाहों का सूटर जरूर दिलवाऊंगा. सर्दी भर कंपकंपाती हो. देखा नहीं जाता. यह धोती क्यों पहन रखी है? कितनी बार कहा है कि इसे फेंको. न सिर पर साबुत है, न गाती पर. हां, एक रूई की कट्टा बंडी भी तुम्हें सिलवाने के लिये उससे कहूंगा. फिर सर्दी में सांस का दौरा इतना ज्यादा तुम्हें नहीं उठेगा. ढेर काया कर रखी है अपनी. मुंह देखो, कैसा निकल आया है? जाने क्या उधेड़ती-बिनती रहती हो?" चौधरी की छुअन और शहद-सी बातें आज बहुत दिनों बाद ऐसी अच्छी लगीं, जैसी नयी उमर के अकेले कोनों में भी नहीं लगी थीं. उठकर वह बैठ गयीं और चौधरी जी के पांवों के अंगूठे सहलाते हुए ऐसी लाजभरी कचनारी हो उठीं, जैसे बांह भरी छुई-मुई गदेली भर सिकुड़कर गेंदा बन जाये!

"बस जी रहने भी दो. यही बातें तो मुझे तुम्हारी जलाकर कोयला करती हैं. मुझे कहां की बैरन मौत आ रही है, जो बंडी-सूटर सब मेरी अर्थी पर ही सजेंगे? अपनी ओर भी कभी टुक झांका है? पूरे दस बरस से जी हुलसा रहा है गरम ऊनी कोट बनवाने को. जनम बीत गया रूई की सकल-परिया सदरी लादते-लादते. ये सदरी भी तार-तार बिखर



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई है. सर्दियां अंगोछा लपेटे पार होती हैं. किशन से कहकर तुम्हारे लिये झवारकत फितूई, मखमली सदरी, चार किलो रूई की रजाई, कंबल और चारखाने का गरम कोट तैयार कराऊंगी. ऊपर से मोतिया झलकीवाला साफा. तब लगोगे पढ़े-लिखे बेटे के कड़ियल बाप. क्यों? मेरा क्या है? नंगे पांव दौड़ी गमी कि मरे पांव आयो सर्दी. अगले साल मेरा बाना बन जायेगा."

चौधरी जी एक बात सुबह से कहना चाह रहे थे, लेकिन डर रहे थे कि सुनकर पार्वती का जाने क्या रुख हो? अब वातावरण उपयुक्त समझकर हिम्मत की, "सुनो पारू! क्या खयाल है तुम्हारा, कि अगर हम बिना खबर किये यह दीवाली किशन के पास चलकर मनाने के लिये शहर पहुंचें तो कैसा रहे? अचानक हमें त्योहार पर देखकर वह कितना खुश होगा? बहू भी तुम्हें देख मगन हो उठेगी. तुम चाहती भी हो बेटे की नौकरी का सुख पाना! अभी हमने कहां देखा है उसका राज? लौटते में कपड़े भी ले आयेंगे."

पार्वती के मन का चोर दरवाजा खुल गया, "मन तो मेरा भी कर रहा है. कई बार सोचा कि कहूं, पर जाने तुम मानते या नहीं, सो जी मसोसकर रह गई. जल्दी ही चलो न! दिन ही कितने रह गये हैं? कुल जमा पखवारा मुश्किल से है इस त्योहार के आने में. बोलो फिर?"

"हां, जल्दी ही निकल चलो. रुपये-पैसे का इंतजाम करना पड़ेगा न! भाड़ा है, बच्चों, बहू-बेटे के लिये कुछ मीठा-सीठा भी चाहिये. दस-पांच सफर में बने रहने चाहिये ज्यादा, जाने कैसा ऊंच-नीच हो जाये! जमाना पहले ही बुरा चल रहा है. देखो, कल हजारी से मांग लूंगा रुपये. शहर जाकर किशन से ले लेंगे. लौटकर इसे दे देंगे. फिर पक्का रहा जाना. अब सो जा पारू, रात आधी गहरा गई है."

दूसरे दिन पार्वती के पांव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे. हवा में जैसे देही अधर उड़ रही थी. मुंह अंधेरे ही उठकर उन्होंने घोल फेंट लिया. मीठे सकलपारे, खजूरे, नमकीन, सेंटिये, मठरी और आजवायन की मोमन-दूध मिंड़ी पूड़ियां सेंक पूरा डल्लाभर पकवान तैयार कर लिया. बचे-खुचे जेवर झाड़ू की नारियल सींकों से निखारे और गुलाबी फूल-दार चप्पल झाड़-पोंछकर रख लीं. चौड़े बत्तख किनारे वाली धोती पहनकर मोहल्ले के चार घरों में कह आयीं कि बेटा-बहू के निहोरे आये हैं दसियों खतों में कि इस बार शहर आकर घर में दीये जलवाओ. क्या करें! बचवा का मन तो रखना जरूरी है. बहू को भी दस बातें घर-गिरस्ती की बतानी हैं. किशन के दोनों बालकों को देखने की भी ललक उठ रही है. छोटना तो देखा ही कहां है? वहीं पीहर में जचगी कर डाली, सो पहली बार अब जाकर देखना है उसे.

मुहल्ले-टोले की औरतें बस-अड्डे तक विदा करने आयीं, तब जी कैसा हुलसा जा रहा था. चौधरी का मन भी दो-चार बूढ़े-बड़ों के बीच बांसों उछाल मार रहा था. एक-दो जवान छई-छोकरों को समझा आये थे कि घर का ताला संभाल लिया करना. गाय और बैल-भैंस रमचंदी की लड़ामनी पर बांध दिये थे कि भाई, जब तक लौटें, इनकी भी देखभाल कर लेना. कड़वी के पूले पटक आये थे कुट्टी-सानी के लिये. निश्चित मन होकर दोनों बस में बैठ गये.

चौधरी जी सोच रहे थे कि जाने कब तक लौटना होगा? क्या पता बेटा जिद करके उन्हें रुकने के लिये कहे? हो सकता है बहू अपनी सास का रास्ता रोककर खड़ी हो जाये! तब तो महीना-बीस दिन और रुकना पड़ सकता है. बेचारा रमचंदी हलकान हो जायेगा ढोर-डांगर संभालते-संभालते. ऊंह; जो होगा, सो देखा जायेगा!

बेटे का शहर आ गया था. खबर तो किसी को की ही नहीं थी, सो रिक्शा करके दोनों चल दिये. एक बार ही तो इस नये घर में आये थे, इसलिये कई बार पता पूछना पड़ा. रास्ते में अमरूद और संतरे भी खरीद लिये. एक गुच्छा केलों का ले लिया. दोनों ने कुछ रास्ते में चलते हुए खा लिये, शेष को झोले में डाल लिया. रिक्शा जब बेटे के दरवाजे पर आया, तब दोनों ही पुलक रहे थे. द्वार की कुंडी खटखटाई. सोचा बेटा आयेगा, तो कैसा चौंकेगा? बक्से-बोरिये उठाते हुए सौ प्रश्न कर डालेगा कि खत क्यों नहीं डाला! खुद जाकर ले आते! कि दरवाजा खुला. सामने बहू थी. इन लोगों को देखा, तो थोड़ी संकुचित-सी हो उठी. सिर पर पल्ला ले माथे तक सरका लिया. पता लगा कि किशन किसी दोस्त के गया है अभी-अभी. कब आयेगा? कोई ठिकाना नहीं. बड़का पड़ौस में खेलने गया है. छोटका सो रहा है.

पूरे घर में, पड़ौस में सन्नाटा-सा छाया हुआ था. बहू ने हाथ-पांव धुलाकर चाय दे दी. ऊपर के कमरे में खाट पर दरी बिछाकर बैठा दिया और खुद नीचे जाकर चौके में खटर-पटर करने लगी. दोनों ऊपर बैठे एक-दूसरे को टुकुर-टुकुर देखने लगे. मन का उल्लास जम गया था, जिस पर उदासी की गहरी काई जमने लगी थी. "देखो तो बहू को! कैसी तौला-सा मुंह खोले पटर-पटर जीभ चला रही थी तुम्हारे सामने! छोटके को लाकर भी नहीं दिखाया. बैठा गयी यहां कैद करके. बेटा नहीं आये, तब तक धरे रहो यहां अचार के-से घड़े बने हुए. भूत से तो पहले ही ब्या रहे हैं घर-बाहर. क्यों जी, कैसे जी लगता होगा इनका?"

"सब लगता है. बहू पढ़ी-लिखी है. घुटने तक घूंघट निकालेगी क्या? बच्चा सो रहा है. उठेगा, तभी तो देगी तुम्हें लाकर. तुम थोड़ी कमर सीधी कर लो. किशन के आने तक मैं थोड़ा छत पर टहल लूं." वह चुपचाप आंखों पर हाथ रखकर लेट गयीं. एक-डेढ़ घंटे तक, जब तक किशन नहीं आया, कोई ऊपर नहीं झांका. न बच्चा, न बहू. हालांकि उन्हें प्यास लगी थी, पर वह नीचे नहीं गयीं. जाने क्यों, एक पराया-पन-सा उन्हें जकड़े डाल रहा था. सूने-सन्नाट ये घंटे बरसों लंबे दुखदायी से लगे. नीचे से किशन की आवाज आयी. दोनों जान गये कि अब ऊपरवाली कैद से छुटकारा मिलेगा.

बेटा ऊपर आया. मां-बाप के पैर छुए. दो-चार रास्ते-गांव की बातें पूछकर नीचे ले गया. छोटका खटोले पर लेटा था. पार्वती हौंसकर उस पर झुकीं. तभी बहू बोल पड़ी, "ठहरिये मांजी, अभी इसे बेबीफूड दिया है, जरा हाथ-पैर



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## समाज साहित्यकारों से क्या चाहता है?

▣ रामविलास शर्मा

यह बहस बेकार है कि समाज साहित्यकारों से क्या चाहता है और साहित्यकार समाज से क्या चाहते हैं. काम की बात केवल यह है कि साहित्यकारों का संपर्क समाज से होना चाहिए और उन्हें जनता के लिए लिखना चाहिए. उन्हें इस बात की चिंता छोड़कर कि उनके बारे में क्या कहा या लिखा जा रहा है, सामाजिक यथार्थ का चित्रण करना चाहिए. प्रेमचंद के जीवन काल में उन पर कोई पुस्तक नहीं लिखी गई, उनके बारे में उस समय जो लिखा गया, उसमें से ज्यादातर उनके विरोध में था, फिर भी प्रेमचंद जन-जीवन का यथार्थ चित्रण करते रहे. बाद के लेखकों में यह चीज नहीं रही, इसीलिए प्रेमचंद जैसा महान साहित्यकार हिंदी में अब तक दूसरा नहीं हुआ. □

पटक रहा है, यों ही लेटा रहने दीजिये. आप पहले नहा-धोकर कपड़े बदल लें, तब उठा लेना."

उनके हाथ वहीं थम गये. बच्चा लेने के लिये भी सगुन-आज्ञा लेनी पड़ेगी क्या? चेहरे की झेंप मिटाने के लिये वहीं बैठकर दूर से चुटकी बजाने लगीं. तभी उन्होंने हुमक कर मेज पर रखी पिटारी-पोटली खींची. पास की अल्मारी में रखा टी-सेट छन्न से जमीन पर गिरा. कुछ प्याले-प्लेट टूट गये. बहू के मुंह से 'ओह!' निकल पड़ा, "यह तो बड़ा नुकसान हो गया. सबसे कीमती सेट खत्म हो गया. आप मुझसे कहतीं, मैं उतार देती आपका सामान. यह विदेशी सेट इधर तो मिलेगा भी नहीं." चौधरी जी कुर्सी में पत्थर की मूर्ति बने स्थिर बैठे थे.

"क्या है अम्मा इन गठरियों में!" किशन बड़े उदासीन लहजे में बोला.

"कुछ नहीं रे किसुना! ले देख, ये सारे पकवान तेरे लिये दिन निकले से ही बनाये हैं मैंने. तुझे ये बहुत पसंद हैं न! ले, खा बैठकर. ये फल-फलूरी हैं बच्चों के लिये." उन्होंने देखा कि बहू-बेटे के चेहरों पर कोई खुशी नहीं झलकी थी.

"काहे को इतना फिजूल अड़ंगा बना लायी हो? तेल, बेसन और गुड़ कहां हजम होता है शहर के पानी में? फिर मैं अभी एक मित्र के घर से बिस्कुट और चाय लेकर आ रहा हूं. ठहरो, अभी तो भूख ही नहीं है." यह कहकर वह कुर्सी के नीचे झुककर प्यालों के टूटे टुकड़े बीनने लगा. पार्वती हक्की-बक्की-सी रह गयीं. किशन भीतर चला गया था शायद कपड़े बदलने. चौधरी जी और वह ऐसे कुर्सियों में धंसे-पथराये से-बैठे थे कि न हिलते थे, न डुलते थे. थोड़ी देर बाद किशन ने आकर पूछा, "बापू! बिस्तर बाहर ही छोड़ दिया है क्या?"

"बिस्तर तो हम नहीं लाये बेटा! हमने सोचा कि जब तुम्हारे घर जा रहे हैं, तब इसकी क्या जरूरत है? अधिक सर्दी तो है नहीं, थोड़े ओढ़ने-बिछौने से ही हमारा तो काम चल जायेगा. तुम चिंता मत करो. फिर भई! बुढ़ापे का रहा शरीर, क्या-क्या घसीटते? ट्रंक ले आये, यह क्या कम है?" वह हकबकाये से बोल गये जैसे-तैसे.

"खैर बापू बिस्तर तो ले ही आना चाहिये था आपको. जाने दो अब, देखता हूं कपड़े वगैरा निकालकर आप लोगों के बिस्तरे लगाता हूं. तब तक आप ऊपर के कमरे में चलकर आराम करें."

दोनों ने ऊपर जाकर देखा कि अधफटी दरियों पर मैले से चादरे बिछे हुए थे. जब बरांडे से होकर वे लोग ऊपर आ रहे थे, तब सामने कमरे में बहू-बेटे के बिस्तर कितने साफ-सुथरे बिछे हुए थे! ऊपर आकर एक-दूसरे से बिना बोले चुपचाप सो गये.

दो दिन बीत गये. सब काम उस घर में जैसे मशीन की तरह हो रहे थे. पार्वती का मन उकता गया था. बेटे ने बहुत कम बातें की थीं, जो की थीं, वे चलती-फिरती-सी. पार्वती साध लेकर आयी थीं कि यह कहूंगी बहू से, वह कहूंगी. सलाह-मशविरे दूंगी. बेटे से आधी-आधी रात तक घुट-घुटकर बातें करेंगी. बेटा उनके पहुंचते ही बहू के हाथों से ताली का गुच्छा लेकर उन्हें देते हुए कहेगा, "लो अम्मा! संभालो अपने बेटे का घर. बापू! अब खेती उठा दो आध-बटाई पर, मौज करो यहां बैठकर. देख आया करना साल छै-महीने में खेत-गांव. बहुत कर ली तुम लोगों ने मेहनत, अब बस आराम से रहो. . ."

शाम को अचानक चौधरी जी के दांत में बड़ा भयानक दर्द हो गया. दूसरे दिन उसमें सूजन बहुत बढ़ गयी. भयानक दर्द. चौधरी जी बिलबिला उठे. दो दिन यही हाल रहा. कल किशन से कहा था कि रोज उड़द की दाल बनवा लेते हो. आज मना कर देना. यह और बादी करती है. दर्द और सूजन इसी के कारण बढ़ रही है, लेकिन वही उड़द की दाल फिर भी बहू ने बनाकर ऊपर भेज दी थी, जिसका नतीजा रहा कि आधा मुंह सूजकर फुटबाल हो गया. रात भर उन्हें चैन नहीं पड़ा. सुबह से पड़े कराह रहे थे. पार्वती अलग हैरान कि इस पराये-से घर में क्या करें?

शाम तक दांत का दर्द जब असहनीय हो गया, तो उन्होंने गर्म पानी की मांग की. उन्होंने सोचा कि किशन से लाल दवाई मंगाकर गर्म पानी से कुल्ले कर लें इस दवाई को मिलाकर, लेकिन किशन आजकल घर में टिकता ही कहां था! एक चकफेरी सुबह लगाकर नीचे चला जाता. फिर तो बाजार गये हैं, दोस्त के पास गये हैं, दफ्तर गये. . .आदि शब्द ही मिलते थे. रात को देर से आता. वही एक-सा बहाना कि दफ्तर में ज्यादा ओवर लोड चल रहा है. पार्वती सोचती कि सब बकवास है. यह हमारी वजह से मुंह चुराता फिरता है. बहू को देखो तो वह ढोल-सा मुंह फुलाये फिरती है. बालक को



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न जाने बैरन ने क्या सिखाया है कि मजाल है ऊपर झांक जायें! भाड़ में जाओ. अब की आयी सो आयी, आगे राम दुहाई.

कोरा गर्म पानी लेकर अभी तक कोई नहीं आया था. नीचे अचानक किशन के बोलने की आवाज आयी. वह मुंह पर गमछा लपेटकर नीचे नल के पास आ बैठे. सोचा कि अगर पानी अभी गरम नहीं हुआ है, तो हो जायेगा और बेटे से लाल दवा भी मंगा लेंगे. रसोई नल से जरा-सी हटकर ही थी. किशन या बहू को पता नहीं चल सका कि वह नल के नीचे बैठे हैं. उन्होंने सुना कि किशन बहू से कह रहा था कि चूल्हे पर से सब्जी उतारकर पहले पानी गर्म कर दो और बहू झल्ला रही थी कि, "उतार तो रही हूं, ऐसी क्या आफत आ रही है? नाक में दम करके रख दिया है. हर वक्त घुटन-सी फैली रहती है. पानी, पानी, छत सिर पर उठा रखी है."

किशन उसे धीरे बोलने के लिये फुसफुसा रहा था, "क्यों चिंघाड़ रही हो? सुन लिया तो?"

"सुन लेंगे तो क्या फांसी लगा देंगे? काम करते, जल्दी करते तो यह हाल है, नहीं तो जाने क्या हो? आज कितने दिन हो गये घर में पड़े सड़ते हुए? न घूमना रहा, न फिरना. बच्चा अलग अनाथ-सा पड़ा रहता है. मुन्ना नहीं देखा कितना उखड़ा-उखड़ा घूमता रहता है!" बहू की आवाज में रोने जैसा नाटक था. बेटा फिर बड़बड़ाया, "घूमने की अच्छी कही. सच कहता हूं कि आज शर्मा जिद कर रहा था सिनेमा ले चलने के लिये. तीन पास लाया था, दिखा रहा था मुझे. क्या करता! सोचा कि हम-तुम चलेंगे, तो ये लोग बुरा मानेंगे. इन्हें भी ले चलें, तो बेकार. समझेंगे तो एक कक्का नहीं, यों ही मुंह-आंख फाड़े बैठे रहेंगे. बेकार पैसे बरबाद होंगे. बस, यही सोचकर तुम्हारी कसम, मन मारकर उसे चलने से मना कर दिया. लाओ, पानी हो गया हो तो दे आऊं. . . सुनो सरला! जल्दी से खाना बना लो, तो चलो आज तुम्हें और बच्चों को थोड़ा घुमा लाऊं. दीवाली के कारण देखना बाजार कितने सजने लगे हैं!"

"अब आज छोड़ो घूमना-फिरना. ये लोग जब यहां से चले जायेंगे, तब देखा जायेगा. इन लोगों को खलेगा बेकार. मेरी पड़ौसन खाय दही, मुझपे कैसे जाय सही. है कि नहीं. मुंह फुला लेंगे दोनों कि हमें तो ले नहीं गये बाजार घुमाने और खुद सज-धजकर गये हैं. है न?"

चौधरी जी की आंखों के सामने घर, आंगन और नल सब घूमने लगे थे. दांत का दर्द कलेजे के दर्द के सामने हवा हो गया था. जैसे उनके खेत की मेंड के पास उगी झरबेरी के सारे कांटे उनके जिस्म में फंस गये हों? जल्दी-जल्दी पानी उड़ेलकर ऊपर आकर धम्म-से खाट पर ढह गये.

"क्या दर्द बहुत सता रहा है किसना के बापू?"

"हां, बहुत परेशान हो उठा है जी मेरा. हम कल सुबह गांव चलेंगे. सुन रही हो या नहीं? कल चलना है. समेट लो अपने कपड़े-लत्ते, चीज-बस्त सारी."

"अरे, तो मैं कब पगारी डाल रही हूं पैरों में कि मत चलो. जरूर निकलो यहां से. अभी समेटे लेती हूं ओटली-पोटली. है ही क्या ज्यादा?"

सुबह उठते ही दोनों तैयार हो गये. बोले, "भई किशन! इस पहली मोटर से हमें बैठा दे. दोपहर तक गांव पहुंच जायेंगे. सोचा तो यही था कि त्योहार-वार इधर तुम लोगों के साथ ही मनायेंगे इस बार, मगर तुम्हारी अम्मा का दिल कुछ जम नहीं रहा है. कहती है कि दीया-वाती घर ही जाकर गांव में करेंगी. तुम लोगों को देखने-मिलने को जी तरस रहा था, सो खूब अच्छी तरह देख लिया. चलो, हमें बैठा आओ ना. . .नाऽ ऽ, नास्ता-पानी कुछ नहीं. हमारे भयानक दर्द है और यह अल्लसुबह कुछ लेती नहीं है."

किशन ने एक-दो बार नां-नूं की, फिर जाने की स्वीकृति दे दी. बाप के जी में फिर छनाका हुआ. मन तरसता रह गया सुनने को कि बेटा जिद करके हाथ पकड़कर बैठ जायेगा. न भेजने के लिये हठ करेगा. रोकने के लिये मनायेगा. बहू सास का रास्ता रोक लेगी. पर सारे सपने गिर-गिरकर चकनाचूर होते रहे. वे दोनों गठरी-पुटरी लिये खड़े रह गये लुटे-पिटे से. बेटा तांगा ले आया. चलते समय उसने पचास रुपये का नोट पिता को देकर कहा, "लो बापू, इन्हें रख लो सफर के लिये. टिकिट वहां कटा दूंगा, लेकिन बस चलने तक शायद रुक नहीं सकूंगा. बुरा मत मानना आप लोग. करूं क्या! यह नौकरी ही ऐसी है कि तुरंत ठीक समय पर भागो. वैसे छुट्टी भी ले सकता था आज की, पर बेकार रहेगी. फिर किसी आड़े दिन काम आयेगी. गिनती की तो मिलती हैं वर्ष भर में."

"अरे नहीं, तुम चलकर कौन-सा वहां शेर का शिकार करोगे! हम खुद ले लेंगे टिकिट भी और आराम से बैठ लेंगे. ये पचास रुपये तुम रख लो बेटा. हमारी तरफ से मिठाई लाना बच्चों को. हमारे पास प्रभु की दया से पैसे-धेले हैं, तुम लोग खुश रहो, हम दोनों की ओर से यही आशीर्वाद है." धीरे से उठकर उन्होंने रुपये खाट की पाटी पर रख दिये. दस रुपये अपनी ओर से उस पचास रुपये के नोट के साथ और मिला दिये थे. हजारों बिच्छुओं के डंकों जैसा वहां का माहौल उन्हें लग रहा था. बहू रसोई के दरवाजे पर ही खड़ी थी. आगे आकर सास के पांव जब छूने को नहीं झुकी, तब पार्वती ने वहीं जाकर उसके सिर पर हाथ फिरा दिया और दोनों हारे जुआरियों की तरह बाहर आकर तांगे में बैठ गये. बहू-बेटे ने आकर नाम को एक उंगली से पैर छू दिये. तांगा चल दिया. चार आंखें तांगे में समंदर बनी लहरा उठीं.

चौधरी जी ने बस-अड्डे पर आकर धर्मशाला का पता पूछा. अच्छी-सी धर्मशाला देखकर वहां पर पड़े लंबे-चौड़े तख्त पर बैठकर बड़ी आजादी की सांस खींची. पार्वती हैरान कि गांव की मोटर में बैठने की जगह यहां क्यों आ गये हैं?

"अरी पगली! तू तो ऊंच-नीच समझती नहीं. जब गांव सिमाने के पूछेंगे कि बेटा-बहू के पास दीवाली नहीं मनाई क्या? तब क्या कहेगी? अब दो दिन यहां रुककर त्योहार बीते ही चलेंगे. समझ गई न!" पार्वती फफक उठीं. कई दिन का रुका जल बह चला. . . ☐

● श्री महावीर उ. मा. विद्यालय, सी स्कीम, जयपुर (राज.).



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

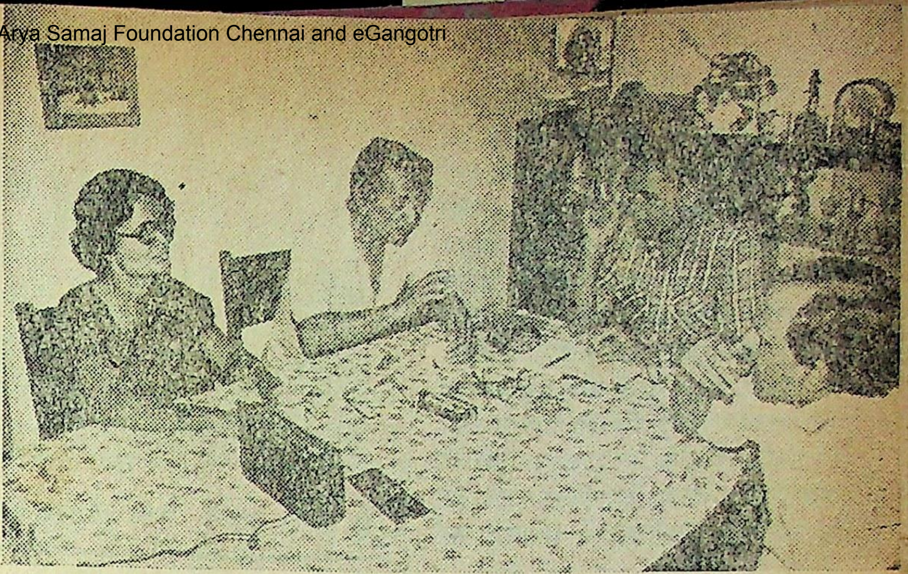

▣ सोमवार, २० अगस्त, १९८४ कृष्ण-जन्माष्टमी के दिन, तीसरे पहर भीष्मजी के निवास स्थान पर (दायें से क्रमशः) नमिता सिंह, भीष्म साहनी, रमेश उपाध्याय एवं कर्ण सिंह चौहान के बीच समकालीन कहानी पर हुई गौरतलब बातचीत . . . .

# कहानी आत्मपरकता से वस्तुपरकता की ओर जा रही है

**रमेश उपाध्याय :** ऐसा लगता है कि **'कविता की वापसी'** की घनघोर चर्चाओं के बावजूद कहानी आज फिर हिंदी साहित्य के केंद्र में है. वे लोग भी; जो कहानी पर लिखते-लिखते बरसों पहले 'इत्यलम्' कहकर चुप हो चुके थे, फिर से कहानी पर लिखने के इरादे जाहिर कर रहे हैं. मेरे खयाल से इसकी वजह एक तो यह है कि पिछले एक-डेढ़ दशक में हिंदी लेखन में यथार्थवादी प्रवृत्ति पुनः बलवती हुई है और यथार्थवाद से कथा-साहित्य का बड़ा गहरा संबंध है—विशेष रूप से कहानी का—क्योंकि कहानी ऐसी विधा है, जो समय-समय पर आनेवाले भटकावों के बावजूद मूलतः और मुख्यतः यथार्थवादी साहित्यिक विधा है. दूसरी वजह मुझे यह मालूम होती है कि इस नये विकास से यथार्थवाद-विरोधी लोगों की नींद हराम होने लगी है और वे पुनः कहानी को छठे-सातवें दशकों की कहानी की व्यक्तिवादी, अनुभववादी और आधुनिकतावादी प्रवृत्तियों की तरफ मोड़ देना चाहते हैं. जो भी हो, इतना तो तय है कि पिछले दस-पंद्रह वर्षों में कहानी में कुछ महत्त्वपूर्ण बदलाव हुए हैं. क्यों न हम यहीं से अपनी बातचीत शुरू करें कि समकालीन कहानी में इधर क्या परिवर्तन आया है और उस परिवर्तन के क्या कारण हैं?

**भीष्म साहनी :** क्या परिवर्तन आया है, इसके बारे में तो बाद में बात करेंगे, पहले इसके कारणों को देखें. कई चीजें मेरे सामने आती हैं, जैसे जिंदगी की पेचीदगियां बढ़ी हैं, हमारी आर्थिक और सामाजिक स्थिति में परिवर्तन हुए हैं, हमारी व्यवस्था में परिवर्तन हुए हैं और जनता पर दबाव बढ़े हैं. शहरी जिंदगी में ही नहीं, ये दबाव देहाती जिंदगी में भी हैं. इसका असर साहित्य पर किसी न किसी रूप में पड़ना जरूरी था.

**नमिता सिंह :** मैं भीष्मजी की बात से सहमत हूं कि हमारे जीवन पर आर्थिक और सामाजिक दबाव बढ़े हैं. इसके साथ-साथ राजनीतिक स्तर पर भी कुछ बदलाव आये हैं. जैसे जन-आंदोलनों में तेजी आयी है, कई राज्यों में कांग्रेस का विकल्प या गैर-कांग्रेसी सरकारें सत्ता में आयी हैं, लोगों को एक रास्ता भी दिखा है, लोगों में यह आस्था भी पैदा हुई है कि मौजूदा व्यवस्था के अलावा भी कुछ हो सकता है, इसलिए कहानी में भी बदलाव आया है.

**कर्णसिंह चौहान :** मैं तो असल में आलोचक हूं, इसलिए मुझको थोड़ा इतिहास में जाना पड़ेगा. रमेश ने जो भूमिका बांधी कि **'कविता की वापसी'** की चर्चाओं के बावजूद कहानी केंद्र में हैं और लोग उस पर चर्चाएं कर रहे हैं, उसके बारे में मुझे यह कहना है कि कहानी पर कोई चर्चा करे, इससे आप यह न समझ लीजिए कि कहानी को केंद्र में मानकर चल रहे हैं लोग. फैज का एक शेर है : **कर चुके इश्क अब हवस ही सही, क्या करें फर्ज है अदा-ए-नमाज.** तो कई बार चर्चा ऐसे भी होती है कि एक जमाने में इश्क था कहानी से, अब हवस ही सही, तो इतिहास यह है . . .

**भीष्म साहनी :** कहानीकारों का या आलोचकों का? . . . (सबकी हंसी)

**कर्णसिंह चौहान :** नहीं, मैं आलोचकों की बात कर रहा हूं. खैर, कहानी में परिवर्तन तो हुआ है. यथार्थवादी कहानी प्रेमचंद के जमाने से शुरू हुई, लेकिन बाद में हम हिंदी कहानी में यथार्थवादी और यथार्थवाद-विरोधी प्रवृतियों का एक घमासान देखते हैं. **अज्ञेय, जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी, भगवती चरण वर्मा** आदि कई लेखक प्रेमचंद की परंपरा के विरोधी रहे और बाद में भी यह विरोध जारी रहा. पर दूसरी तरफ यथार्थवादी परंपरा भी चलती रही. लेकिन यथार्थवाद विरोधी प्रवृतियों ने जो परिवर्तन कहानी में किया,

पीढ़ियां
आमने-सामने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसको समझने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण काल है 1942, जब हमारे देश में कम्युनिस्ट पार्टी के खिलाफ एक मुहिम चली—राजनीति में चली और उसके बाद शीत-युद्ध के कारण साहित्य में भी चली. इसके चलते मनोविश्लेषणवादी, व्यक्तिवादी और आधुनिकतावादी प्रवृत्तियां साहित्य में उभरीं. इनके पीछे शीत-युद्ध की यह विचारधारा थी कि सामजवाद का विरोध करने के लिए उसे लोगों के सामने इस तरह पेश किया जाये कि उसमें और साम्राज्यवाद में कोई फर्क नजर न आये.

**रमेश उपाध्याय :** साहित्य के संदर्भ में इसकी चर्चा **मुक्तिबोध** ने भी की है.

**कर्णसिंह चौहान :** हां. और आजादी के बाद इसी विचारधारा के लोगों का वर्चस्व हुआ. कविता में तो साफ दीखता है कि नेतृत्व उनके हाथ में रहा और **'प्रयोगवाद'**, **'नयी कविता,'** **'अकविता'** वगैरह के जरिए उन्होंने कविता को मनमाना मोड़ दिया. कहानी में भी यही चीज हुई, पर कहानी के साथ एक अच्छी बात यह रही कि. . और यह शायद इस विधा की एक मजबूरी भी हो सकती है कि **'नयी कहानी'** के माध्यम से नये कहानीकारों ने **प्रेमचंद** की यथार्थवादी परंपरा से अपने को जोड़ने और उन पेचीदिगियों को समझने की कोशिश की, जो **प्रेमचंद** के बाद भारतीय जीवन में आयी थीं. **'नयी कहानी'** का यह स्वस्थ पहलू काफी समय तक दिखायी पड़ता है, लेकिन बाद में इस पर भी शीत-युद्ध की विचारधारा हावी हुई और **'अकहानी'** के रूप में **'नयी कहानी'** का हश्र हुआ.

**रमेश उपाध्याय :** मगर प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ानेवाले कहानीकार इस दौरान बराबर सक्रिय रहे. **यशपाल, रांगेय राघव, मुक्तिबोध, नागार्जुन, भैरव प्रसाद गुप्त, अमरकांत, मार्कंडेय, शेखर जोशी, भीष्म साहनी, हरिशंकर परसाई** वगैरह उस दौर में भी यथार्थवादी कहानी की परंपरा को आगे बढ़ाते रहे.

**कर्णसिंह चौहान :** यही मैंने कहा.

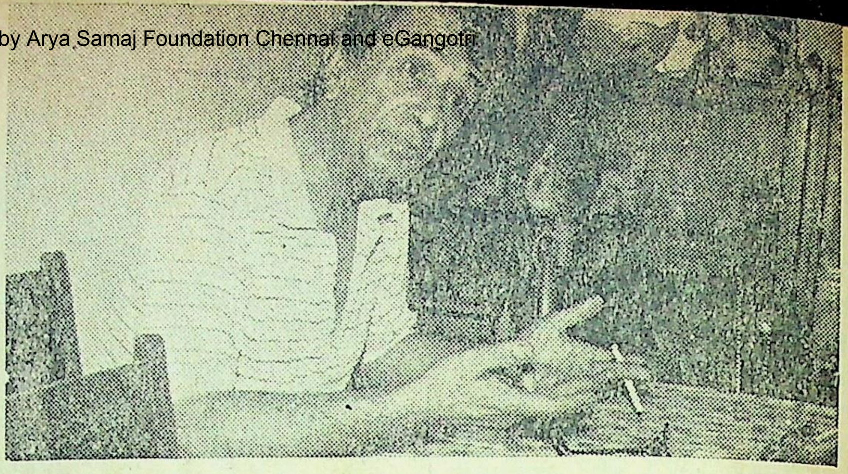

**● भीष्म साहनी : कथ्य को जिस रूप में कहानीकार ने देखा है. . .**

लेकिन समकालीन कहानी में आनेवाले परिवर्तन को समझने के लिए शीत-युद्ध की विचारधारा के इस संदर्भ को याद रखना जरूरी है, क्योंकि समकालीन कहानी इसी के विरुद्ध संघर्ष करके आगे बढ़ी है और बदली है. यह बदलाव दिखायी देता है 1967 के आसपास जब आजादी के बाद इस देश में शासक वर्गों के द्वारा बनाये गये तंत्र के विरुद्ध यानी उस तंत्र में निहित अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध लोगों का आक्रोश प्रकट होता है. उस समय हम देखते हैं कि तमाम राज्यों में जन-आंदोलन होते हैं और 1967 के चुनावों में कांग्रेस का वर्चस्व टूटता है, जगह-जगह गैर-कांग्रेसी सरकारें बनती हैं. यह लोगों के आक्रोश का विस्फोट है. और इसका प्रभाव सीधा-सीधा न सही, पर साहित्य पर पड़ा जरूर. कहानी पर भी पड़ा.

**रमेश उपाध्याय :** यह भी ध्यान देने की बात है कि उस समय व्यावसायिक पत्रिकाओं के खिलाफ साहित्यिक पत्रिकाओं का एक जबरदस्त आंदोलन शुरू हुआ और. . . . .

**कर्णसिंह चौहान :** हां, व्यावसायिक पत्र-पत्रिकाओं की आजादी के आंदोलन के दौरान जो एक स्वस्थ भूमिका रही, आजादी के बाद वह भूमिका उत्तरोत्तर समाप्त होती गयी. मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि **'नयी कहानी'** के आंदोलन तक उनकी स्वस्थ भूमिका दिखायी देती है और यथार्थवादी धारा के लेखक उनमें लिखते दिखायी देते हैं. लेकिन धीरे-धीरे इन पत्रिकाओं पर व्यावसायिकता बुरी तरह हावी हो जाती है. अच्छे लेखक वहां से हटने लगते हैं और नयी-नयी लघु साहित्यिक पत्रिकाओं का एक आंदोलन शुरू होता है. उस समय सैकड़ों ऐसे रचनाकार परिदृश्य पर आये, जो उस समय के जन-आंदोलन से जुड़े हुए थे. तो यह जो परिवर्तन हुआ है, उसका एक बड़ा संदर्भ है और वह ठोस संदर्भ है सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक.

**भीष्म साहनी :** एक बात मैं कहना चाहता हूं. लिखनेवाला अपने आस-पास की जिंदगी के बारे में इतनी साफ समझ लेकर निष्कर्ष नहीं निकाल पाता. ऐतिहासिक दृष्टि से देखकर तो हम निष्कर्ष निकाल लेते हैं, लेकिन जो जी रहा होता है उन अनुभवों के बीच में, उसके लिए एक निष्पक्ष और सही परिप्रेक्ष्य में चीजों को देखना कठिन होता है. मगर उसके लिए अपना अनुभव बहुत महत्वपूर्ण होता है. अगर वह अपने अनुभवों को ठीक से पकड़ता है तो सही परिप्रेक्ष्य में ये चीजें बाद में फिट हो जाती हैं और हम देखते हैं कि उस समय यह एक स्वर था, यह एक प्रवृत्ति थी, जो पकड़ में तो आ गयी, इस कहानी में लक्षित होती है, लेकिन लिखनेवाला इस बारे में सचेत रहा हो, यह जरूरी नहीं है.

**कर्णसिंह चौहान :** यह तो ठीक है भीष्मजी, लेकिन जब एक वक्त के गुजर जाने के बाद हम दूर से उसको



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखते हैं तो हमारे सामने वह चीज एक पूरी ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में आती है. उसमें मतभेद भी होते हैं, अलग-अलग शेड्स भी होते हैं, अंतर्विरोध भी होते हैं. यह बिल्कुल हो सकता है कि लिखनेवाला उस दौर में उतना सचेत न रहा हो, जितना आज हम उसे देख रहे हैं, लेकिन इतिहास का अपना एक तर्क भी होता है.

**भीष्म साहनी :** बिल्कुल, यह सही बात है, लेकिन लिखनेवाला. . .

**नमिता सिंह :** शायद आपका मतलब यह है कि लेखक सायास अपनी रचना में वह चीज नहीं लाता, अनुभव के स्तर पर, संवेदना के स्तर पर लाता है?

**भीष्म साहनी :** लेकिन एक नजरिए से चीजों को देखना, एक विशेष दृष्टि से देखना. .

**नमिता सिंह :** लेखक की विशेषता है. . .

**भीष्म साहनी :** हां, यह चीज उसके अंदर होती है. वर्ना एक ही घटना पर लिखते हुए दो लेखक–अलग-अलग कहानियां नहीं लिखते. एक की नजर उसमें एक चीज को देखती है, दूसरे की नजर दूसरी चीज को देखती है. उसकी दृष्टि जरूर होती है, लेकिन वह घटना उसे कचोटती है तो मात्र चिंतन के स्तर पर नहीं.

**रमेश उपाध्याय :** यह तो ठीक है, लेकिन भीष्मजी, रचना में मात्र चिंतन के स्तर पर कुछ नहीं होता, अनुभव को चिंतन से अलग नहीं किया जा सकता. लेखक संवेदनशील है, इसका अर्थ ही यह है कि वह चिंतनशील है. इसीलिए चीजें उसे कचोटती हैं. जिन चीजों से उद्वेलित होकर वह लिखता है, उनमें समाज की तमाम जटिलताएं और अंतर्विरोध मौजूद होते हैं, और उन सबका प्रभाव रचना पर पड़ता है. लेकिन जिस लेखक की दृष्टि ज्यादा साफ, ज्यादा गहराई तक चीजों को देखनेवाली होती है—एक शब्द में कहें तो जो लेखक ज्यादा सचेत होता है—वह उस घटना को यथार्थ के बहुत सारे अनुषंगों के साथ पकड़ता है, जबकि वह लेखक जो कम सचेत है, निजी अनुभव की सीमा तक ही रह जाता है. उसका लेखन ज्यादातर आत्मपरक होता है, उतना वस्तुपरक नहीं हो पाता और . . इससे होता यह है कि हम उसकी रचना में उस युग की बहुपक्षीय वास्तविकताओं को, उस युग के वस्तुपरक यथार्थ को, नहीं पाते, जबकि एक ज्यादा सचेत लेखक की रचना में हम उस युग की संवेदना को भी पाते हैं और यह भी पाते हैं कि उस समय के यथार्थ की मुख्य चीजें क्या थीं, यानी समाज में अगर कोई अंतर्विरोध थे तो उनमें से कौन-से अंतर्विरोध मुख्य थे, कौन-से गौण थे. . .

**भीष्म साहनी :** मेरा कोई मतभेद नहीं है आपसे, लेकिन मैं समझता हूं कि इसकी प्रक्रिया कुछ इस तरह की होती है : एक स्थिति में पाये जानेवाले विरोधाभास से एक आदमी का संवेदन झकझोरा जाता है, और यह संवेदन उसके सचेतन के अनुरूप बैठता है तो उसे कचोटता है. इस तरह लेखक यथार्थ से भावनात्मक स्तर पर जुड़ता है और अपने समय के विरोधाभासों को गहराई से महसूस कर पाता है. हो सकता है, लेखक वैचारिक स्तर पर इतना प्रबुद्ध न हो कि इन विरोधाभासों को ठीक-ठीक समझ सके, लेकिन यह जो उसका भावनात्मक स्तर पर यथार्थ से जुड़ना और महसूस करना है, लेखक द्वारा सचेत रूप से सोची गयी कहानी को कहीं का कहीं ले जाता है और इस तरह से लिखी गयी कहानी यथार्थवादी ही होती है, बशर्ते कि यथार्थ को सही परिप्रेक्ष्य में देखने की दृष्टि लेखक के पास हो.

**नमिता सिंह :** हां, अगर दृष्टि उसके पास हो.

**रमेश उपाध्याय :** अच्छा, यह तो सही है कि सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवर्तन साहित्य को प्रभावित करते हैं, लेकिन हमें इस पर भी विचार करना चाहिए कि साहित्य समाज से सिर्फ प्रभावित ही नहीं होता, बल्कि उसे प्रभावित करता भी है और इस प्रक्रिया में स्वयं अपने रूपांतरण की आंतरिक आवश्यकताओं से भी प्रेरित होता है. अगर हम साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का एक औजार मानें तो वैज्ञानिक या तकनीकी उपकरणों की तरह नयी जरूरतों के मुताबिक साहित्य में भी लगातार परिष्कार और परिवर्तन की जरूरत सामने आयेगी. मुझे लगता है कि आज कई कहानीकार सचेत रूप से कहानी में ऐसे परिष्कार और परिवर्तन लाने की कोशिश कर रहे हैं. इस चीज को आप लोग किस तरह देखते हैं?

**नमिता सिंह :** मुझे तो साहित्य से समाज को बदलने की बात में एक दंभ का-सा स्वर लगता है और इसमें मुझे यह खतरा भी नजर आता है कि हम सामाजिक परिवर्तन से संबं-

● **नमिता सिंह : महिला, महत्वपूर्ण कथाकार है तो अपनी रचना के बल पर**

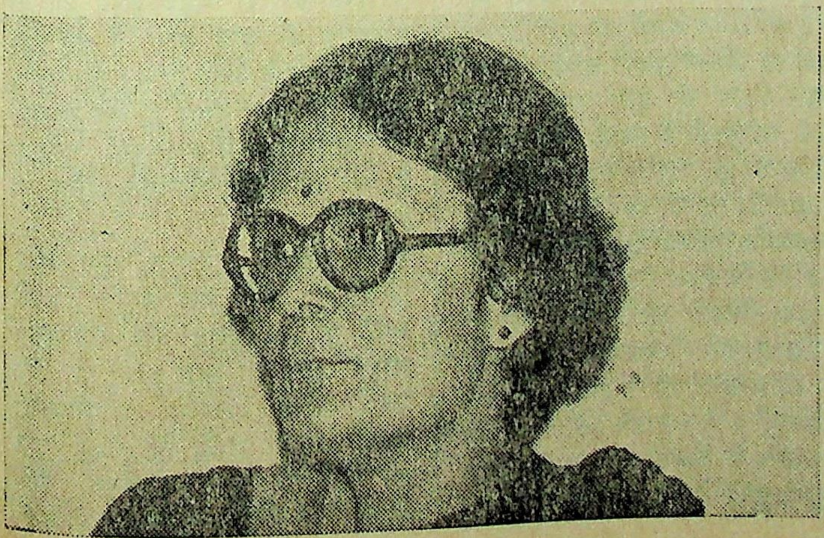



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घित निष्कर्ष पहले निकाल लेते हैं और यथार्थ अनुभवों को उन निष्कर्षों के मुताबिक मोड़ देते हैं. इसलिए जब कोई लेखक समाज को बदलने की बात करता है तो मुझे लगता है कि विचारधारा को जबरदस्ती साहित्य पर लादा जा रहा है.

**भीष्म साहनी :** देखिए, हम अपने काल के इतने निकट होते हैं कि हमारे लिए अपने ही काल की प्रवृत्तियों को स्पष्टतया निष्पक्ष रूप से देख पाना कठिन होता है. फिर भी, मोटे तौर पर मुझे लगता है कि हमारे इधर के साहित्य में कुछ तब्दीलियां आयी हैं. जैसे एक चीज तो यह आयी है कि लेखक हालांकि अभी भी व्यक्ति को साहित्य के केंद्र में रखकर लिखता है, लेकिन अब वह समाज के परिप्रेक्ष्य में देखकर लिखता है. यह चीज **प्रेमचंद** ने ही शुरू की थी, इसमें कोई शक नहीं है, लेकिन कुछ आयाम इसमें बाद में जुड़े हैं, मसलन, वर्गगत समाज की अवधारणा अधिक विकसित हुई है. मतलब, व्यक्ति तो अब भी कहानी के केंद्र में है, पर अब हम उसे एक स्वत: संपूर्ण इकाई के रूप में नहीं लाते, बल्कि उसके साथ वह सब भी आता है, जो उससे जुड़ा हुआ है—मसलन, समाज की आर्थिक विषमताएं और वर्गीय शक्तियां. लेखक अपनी कहानी के पात्र को इन सब चीजों के परिप्रेक्ष्य में देखता है और उसकी भूमिका को भी देखता है.

**कर्णसिंह चौहान :** यों कहें कि कहानी आत्मपरकता से वस्तुपरकता की ओर जा रही है...

**भीष्म साहनी :** हां, जो मुख्य तब्दीली आयी है, वह यही है कि यथार्थ के साथ आज का लेखक पहले की तुलना में ज्यादा जुड़ता है. कहानी में वह कोई नैतिक या आदर्शवादी दुमछल्ला लगाना नहीं चाहता. वह यथार्थ को पकड़ता है और यथार्थ के अंदर पायी जानेवाली परस्पर विरोधी शक्तियों को पकड़ने की कोशिश करता है. अच्छा, इसमें खतरा तब होता है, जब लेखक यह सोचता है, कि लो, लगे हाथ मैं उपदेश दे डालूं, या कोई आदर्श लोगों के सामने प्रस्तुत कर दूं. वहां यथार्थ पर उसकी पकड़ कमजोर पड़ जाती है. वहां कोशिश यह होती है कि मैं स्थिति को इस ढंग से मोड़ दूं कि जो निष्कर्ष मैं देना चाहता हूं, उस पर यह सही बैठे. इस खतरे से बचने के लिए हमें यह समझना होगा कि दृष्टि और विचार, नैतिक मूल्य और मान्यताएं, ये बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं, विचारधारा मुझे रोशनी देती है, चीजों को समझने की एक सूझ देती है, लेकिन मैं जिस कच्ची सामग्री को जीवन में से उठाता हूं, उसको प्रामाणिक स्तर पर रखते हुए ही अपनी बात कहूंगा, भले ही वह निष्कर्ष उसमें न आये जो मेरा मस्तिष्क कहता है. अगर मेरे अंदर तड़प है तो वह उसमें व्यक्त होगी, क्योंकि कोई लेखक तटस्थ नहीं होता. अगर मेरी हमदर्दी किसी के साथ है, तो वह सामने आयेगी, लेकिन वह यथार्थ के धरातल पर आयेगी, मान्यता के धरातल पर भले ही न आये.

**कर्णसिंह चौहान :** रमेश ने जो सवाल उठाया था, वह जहां तक मेरी समझ में आया है, यह है कि नयी जरूरतों के हिसाब से लेखक अपने औजारों को बदलने की कोशिश कैसे करता है. इसका एक पहलू तो यह हो सकता है कि हम भाषा, रूप और शैली वगैरह में आये परिवर्तनों की बात करें, मगर दूसरा और इससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि हम लेखक की दृष्टि में आये परिवर्तन की बात करें. मैंने **गोर्की** का एक निबंध पढ़ा था **'शिल्प संबंधी चर्चा,'** लेकिन उसमें शिल्प की वैसी चर्चा नहीं है जैसी भाषा-शैली आदि के जरिए की जाती है. उसमें चर्चा यह है कि मैं अपनी जिंदगी में जिन अनुभवों, घटनाओं या चरित्रों के संपर्क में आया हूं, उन्हें मैंने किस रूप में देखा है और किस रूप में दिखाने की कोशिश की है. इस तरह देखें तो तकनीक, शिल्प या रूप की बात जीवन के हमारे बुनियादी सरोकारों से जुड़ती है. मसलन **मुक्तिबोध** से लेकर आज तक के अनेक कहानीकारों ने व्यक्तित्वांतरण की प्रक्रिया को अपनी कहानियों में दिखाया है. यह प्रक्रिया आज समाज में **प्रेमचंद** के जमाने के मुकाबले बड़ी तेजी से घटित हो रही है. मध्यवर्ग के लोग शोषित वर्गों की तरफ आ रहे हैं, शोषक वर्गों की तरफ भी जा रहे हैं. यह चीज व्यक्ति की दृष्टि या विचारधारा को ही नहीं, उसके समूचे व्यक्तित्व को बदलती है और यह प्रक्रिया बड़ी जटिल, पेचीदा और अंतर्विरोधों से भरी प्रक्रिया है, जिसका चित्रण करने के लिए बहुत संभव है कि कहानीकार को कहानी लिखने के पुराने तरीके नाकाफी मालूम होते हों और वह नये तरीके तलाश करता हो. इस प्रक्रिया को दिखानेवाली कहानी चाहे **मुक्तिबोध** की **'क्लाड ईथरली'** हो, या **मार्कंडेय** की **'बीच के लोग'**, या **इसराइल** की **'फर्क'**, या **ज्ञानरंजन** की **'घंटा'**, या **काशीनाथ सिंह** की **'सुधीर घोषाल,'** या **रमेश उपाध्याय** की **'दूसरी आजादी'**, या **स्वयं प्रकाश** की **'नीलकांत का सफर'**, या **नमिता सिंह** की **'ठहरा हुआ सवेरा,'** या **रमेश बत्तरा** की **'कत्ल की रात,'** या **सुरेश कांटक** की **'एक बनिहार का आत्मनिवेदन'**—ये कहानियां केवल कथ्य में ही नहीं, बल्कि अपने शिल्प में भी नये ढंग की कहानियां हैं. यहां तक कि इन कहानियों में और इन्हीं लेखकों की दूसरी कहानियों में भी हम शिल्प संबंधी फर्क देख सकते हैं. तो असल बात यह है कि जब हम कहानी में शिल्प या तकनीक की या शैली और रूप के परिवर्तन की बात करते हैं तो वह चर्चा समाज के अंदर हो रहे उन परिवर्तनों की चर्चा होती है, जो रचनाकार अपने कथ्य में भी करना चाहता है, भले ही वह इसके प्रति सचेत हो या नहीं.

**भीष्म साहनी :** अच्छा, एक और परिवर्तन. पहले यह प्रवृत्ति पायी जाती थी कि गरीब और उत्पीड़ित आदमी दया का पात्र होता था और उसके प्रति अनुकंपा जगानेवाली कहानी लिखी जाती थी. अब उस आदमी को हम संघर्षरत पाते हैं. अब उसे हमारी सहानुभूति या अनु-



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कंपा की अपेक्षा नहीं है. वह ज्यादा दृढ़, ज्यादा संघर्षशील और अपने बूते पर खड़ा होनेवाला व्यक्ति है. गरीबों में यह जुझारूपन प्रायः दिखायी देता है, भले ही वह मेरे अनुभव में बहुत कम आया हो. . .

**कर्णसिंह चौहान** : है आपके अनुभव में. आपकी कहानी में है. '**कथन**' में जो आपकी कहानी छपी है '**संभल के बाबू**' उसमें यह चीज है.

**भीष्म साहनी** : यह प्रवृत्ति क्योंकि जिंदगी में पायी जाती है, इसलिए लेखन में भी आयेगी, क्योंकि लेखक उससे प्रभावित होते हैं.

**रमेश उपाध्याय** : सिर्फ प्रभावित होने की बात नहीं है भीष्मजी, लेखक समाज से अलग-थलग रहनेवाला और सामाजिक परिवर्तनों से सिर्फ प्रभाव ग्रहण करने का इकतरफा संबंध बनानेवाला निष्क्रिय प्राणी नहीं है. उन परिवर्तनों में वह खुद भी शामिल है. कहीं न कहीं वह परिवर्तन का माध्यम भी बनता है. अगर वह एक सचेत, संवेदनशील और सक्रिय सामाजिक मनुष्य है, और यह महसूस करता है कि उसकी जिंदगी बदलनी चाहिए, तो वह खुद भी उसे बदलने की कोशिश क्यों नहीं करेगा? और इस कोशिश में वह अपने-आपको भी बदलेगा, अपने लेखन को भी बदलेगा.

**नमिता सिंह** : आप समझते हैं, आपकी कहानी से दुनिया बदल जायेगी?

**रमेश उपाध्याय** : बदलेगी या नहीं, मैं नहीं जानता, लेकिन मैं कोशिश तो करूंगा कि वह बदले. . .

**नमिता सिंह** : पर आप कहानी के अंदर के बदलाव की बात भी कर रहे थे. कहानी के अंदर तो वास्तविकता आपको वैसी ही दिखानी होगी, जैसी वह वास्तव में है.

**रमेश उपाध्याय** : हां, जैसी वह वास्तव में है. लेकिन वास्तव में वह कैसी है, यह इस पर निर्भर करता है कि हम उसे कैसे समझते हैं. फर्ज कीजिए, एक शक्तिशाली आदमी अन्यायपूर्वक एक कमजोर आदमी को पीट रहा है. अगर मैं इसे पिटनेवाले आदमी का भाग्य, या उसके पूर्वजन्म का फल, या भगवान की लीला मानता हूं, तो मैं यह समझूंगा कि पिटना उस आदमी के भाग्य में लिखा है और इसमें वह या कोई और कुछ नहीं कर सकता. हो सकता है कि इस घटना का मुझ पर कोई संवेदनात्मक प्रभाव ही न पड़े और मुझे यह घटना तनिक भी विचलित न करे. या यह भी हो सकता है कि पिटनेवाले पर मुझे दया आये और जैसा कि भीष्मजी ने कहा, मैं उसके प्रति अनुकंपा जगानेवाली कहानी लिख दूं. लेकिन मान लीजिए, सामाजिक न्याय की चेतना से युक्त कोई यथार्थवादी लेखक इस घटना को देखता है, तो उसकी प्रतिक्रिया क्या होगी, उसे लगेगा कि यह अन्याय हो रहा है और यह घटना उसकी चेतना को झकझोरेगी. वह सोचेगा कि इस अन्याय का कारण क्या है. यह भी कि यह चीज बंद होनी चाहिए. और यह भी कि यह चीज बंद हो सकती है या नहीं. नहीं हो सकती तो क्यों, और हो सकती है तो कैसे. ऐसा लेखक अगर इस घटना पर कहानी लिखेगा तो उसकी कहानी बिल्कुल दूसरी तरह की होगी—न केवल अपने कथ्य में, बल्कि शिल्प में भी, संरचना में भी. बात यह है कि इन दोनों तरह की कहानियों में सिर्फ वह प्रभाव ही व्यक्त नहीं होगा, जो एक वास्तविक घटना ने इन दोनों लेखकों पर डाला है, बल्कि उनका सोचना-समझना भी व्यक्त होगा, उनकी पक्षधरता और प्रतिबद्धता भी व्यक्त होगी, वास्तविकता के प्रति उनका रुख-रवैया भी कहानी में व्यक्त होगा.

**भीष्म साहनी** : शायद मैं ठीक तरह से समझा नहीं पाऊं, लेकिन योरप में पहली जंग के बाद एक मोहभंग का स्वर सुनायी देने लगा. दूसरी जंग के बाद तो और भी ज्यादा. और पश्चिमी योरप के देशों में साहित्य में अस्तित्ववादी दृष्टि ज्यादा आयी. हमारे यहां आजादी के बाद जब जीवन की विषमताएं बढने लगीं तो हमारे कुछ साथियों को लगा कि हमारी स्थिति पश्चिमी योरप की स्थिति से मिलती-जुलती है, और वे भी उसी निष्कर्ष को लेकर एक अंधी गली में पहुंच गये, जिससे निकलने का रास्ता नहीं है. परंपरा हमें कोई रास्ता नहीं सुझाती, जीवन के मूल्य हमें कोई रास्ता नहीं सुझाते, मनुष्य अकेला और निस्सहाय हो गया है. भूल वहां हुई कि अपने देश के अनुभव को गौण मानकर एक निष्कर्ष को प्राथमिकता देते हुए चीजें लिखी गयीं. मगर हमारी स्थिति पश्चिमी योरप की स्थिति नहीं थी. विषमताएं और जटिलताएं हमारे जीवन में थीं, इसके बावजूद हमारे लोग जीने के लिए संघर्ष कर रहे थे और उनके सपने टूटे नहीं थे, एक नया देश बनाने की भावना मरी नहीं थी. अंधी गली में हम कदापि नहीं पहुंचे थे. लेकिन सतही ढंग से स्थितियों की विषमताओं को समझकर इस तरह के निष्कर्ष कहानी पर लादे गये और एक ऐसा रुझान आया जो उत्तरोत्तर यथार्थ जीवन से कटता गया, अधिकाधिक आत्मकेंद्रित होता गया. लेखक अनुभव से कटते गये. अनुभव को मैं प्राथमिकता देता हूं, क्योंकि अनुभव में से गुजरकर ही हम अपनी स्थिति का जायजा ले सकते हैं.

**कर्णसिंह चौहान** : लेकिन भीष्मजी, आप उस समय की स्थिति में और आज की स्थिति में अगर कोई समानता देख रहे हैं, तो उससे यह निष्कर्ष निकल रहा है कि आज जो लेखक कहानी में सामाजिक परिवर्तन की बात कर रहे हैं, वे अपने समाज के यथार्थ से, उसके अनुभवों से कटे हुए हैं, और बाहरी निष्कर्षों को कहानी पर लाद रहे हैं. देखना चाहिए कि उस दौर में कौन-से लेखक अंधी गली में पहुंच जाने की बात कर रहे थे. आजादी के बाद तेलंगाना और दूसरी जगहों पर जन-आंदोलनों का दमन हुआ, साथ-साथ उनसे जुड़े हुए प्रगतिशील लेखकों का दमन हुआ, और उसके बाद लगभग बीस वर्षों तक साहित्य में इन लेखकों का विरोध हुआ, इनकी उपेक्षा की गयी, इनके लेखन को पुराना, बासी, घटिया, नकली और निरर्थक बताया गया. व्यवस्था ने इन लेखकों को अपने तंत्र से प्रायः बाहर ही रखा और इन्हें



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे सुविधाएं नहीं मिलीं, जो अंधी गली में पहुंच जाने की बात करनेवाले लेखकों को मिलीं. तो अगर कुंठा, संत्रास, अकेलेपन आदि का अनुभव होना चाहिए था, तो इन लेखकों को होना चाहिए था, जिनका दमन हुआ, जिनकी उपेक्षा हुई, जो अपमानित किये गये. लेकिन अंधी गली, कुंठा, संत्रास वगैरह की बातें इन प्रगतिशील लेखकों ने नहीं कीं. **नागार्जुन, त्रिलोचन, रामविलास शर्मा, भैरव प्रसाद गुप्त, शेखर जोशी**, आप और दूसरे लेखक, जिन्होंने दमन देखा था, अपनी जमीन से जुड़कर बराबर लिखते रहे, जबकि दूसरी तरफ वे लेखक जिनको ऐसी कोई परेशानी नहीं थी, टूटन, घुटन, पीड़ा, निराशा आदि की बातें कर रहे थे और 'अनुभव की प्रामाणिकता' के नारे देकर सारे के सारे प्रगतिशील लेखन को खारिज कर रहे थे. और आज भी प्रायः ऐसे ही लेखक, जिनको समाज के बुनियादी बदलाव से और उससे जुड़ी हुई तकलीफों से कोई लेना-देना नहीं है, समकालीन प्रगतिशील या जनवादी साहित्य पर यह आरोप लगा रहे हैं कि उसमें अनुभव की प्रामाणिकता नहीं है. . .

**रमेश उपाध्याय :** हां, जैसे अभी जनवादी कहानी पर **रमेशचंद्र शाह** ने एक लेख लिखा .है. . .

**भीष्म साहनी :** मैं 'अनुभव की प्रामाणिकता' की बात से कतई सहमत नहीं हूं, क्योंकि 'अपना जिया-भोगा यथार्थ' बड़ी गलत-सी बात है. मैं कैंसर का मरीज हुए बिना भी कैंसर के रोगी के बारे में कहानी लिख सकता हूं. अनुभव से मेरी मुराद वह नहीं है जो मैंने खुद जिया है. मुराद यह है कि जो मैंने देखा है, पढ़ा है, सुना है, जिसने मेरी दृष्टि को पैना बनाया है, जिसने मुझे जिंदगी को समझने की सूझ दी है, और इस नजर से देखें तो हम लोगों की एक कमजोरी है कि हमारा अनुभव-क्षेत्र बड़ा ही सीमित है और हमने सचेत रूप से उसे बढ़ाने की दिशा में कोई कोशिश नहीं की है. आदमी उसी जीवन के बारे में ज्यादा अधिकार के साथ लिख सकता है, जो उसने जिया हो, बहुत नजदीक से देखा हो, या जो संस्कार रूप में उसे मिला हो. अगर मैं सर्वहारा के भविष्य में विश्वास करता हूं तो मुझे सर्वहारा के जीवन को देखना चाहिए. हम लोग ज्यादातर मध्यवर्गीय लोग हैं और हमारे अनुभव भी ज्यादातर मध्यवर्गीय जीवन तक ही सीमित होते हैं, लेकिन अगर हम समाज के व्यापक यथार्थ का चित्रण करना चाहते हैं तो हमें अपने अनुभव के दायरे को बड़ा बनाना चाहिए. जरूरत है कि हम मध्यवर्ग के घेरे को थोड़ा तोड़ें.

**नमिता सिंह :** सही बात है, और मेरा खयाल है कि नये लोगों ने इस घेरे को थोड़ा तोड़ा भी है और तोड़ रहे हैं.

**कर्णसिंह चौहान :** लेखक मध्यवर्गीय दायरे को तोड़ रहे हैं, इसका प्रमाण आज के लेखकों की कहानियां भी दे रही हैं. यों भी कह सकते हैं कि इस नये दौर की शुरुआत ही ऐसी कहानियों से होती है जो इस दायरे को तोड़ती हैं. मसलन कुछ कहानियां हैं : **रमेश उपाध्याय** की **'देवीसिंह कौन?'**, **काशीनाथ सिंह** की **'सुधीर घोषाल'**, **उदय प्रकाश** की **'टेपचू,' असगर वजाहत** की **'दिल्ली पहुंचना है'**. ये कहानियां मुझे एकदम अलग और ट्रेंड-सेटर जैसी कहानियां लगती हैं. इस क्रम में आप कुछ वरिष्ठ कथाकारों की कहानियां भी ले सकते हैं, जैसे **भैरव प्रसाद गुप्त** की **'मंगली की टिकुली'** या फिर **'कथन'** में प्रकाशित उनकी दो कहानियां **'टिड्डे'** और **'हनुमान'** या जैसे **मार्कंडेय** की **'बीच के लोग'** या **शेखर जोशी** की **'सीढ़ियां'** या फिर **भीष्मजी** की **'संभल के बाबू'**. ये पुरानी पीढ़ी के लेखकों की कहानियां होते हुए भी आज के इसी दौर की कहानियां हैं, इसी ट्रेंड की कहानियां हैं. इनमें से कुछ बहुत सशक्त हैं, कुछ कमजोर भी हैं, पर ये सभी कहानियां एक नये विकास को सूचित करती हैं. इन्हें आप एक तरह से उत्सवधर्मी कहानियां कह सकते हैं, जिनमें मजदूरों और किसानों के जीवन का चित्रण एक उल्लास और विजय-गर्व के साथ किया गया है. संघर्षशील मजदूरों और किसानों की विजय होगी, इस बारे में इन लेखकों के मन में कोई उलझन नहीं है. इसीलिए इन पर आरोप भी लगे हैं कि ये कहानियां प्रामाणिक नहीं हैं, कि इनमें संघर्षरत लोगों का केवल स्वस्थ पहलू ही दिखाया गया है, कि इनमें संघर्ष ही संघर्ष होता है, जीत ही जीत होती है, सब कुछ अच्छा ही अच्छा होता है, जबकि वास्तविकता ऐसी नहीं है, क्योंकि मजदूरों और किसानों में बुराइयां भी होती हैं, कमजोरियां भी होती हैं, पिछड़ापन भी होता है, क्रांतिभीरुता भी होती है, छद्मचेतना भी होती है.

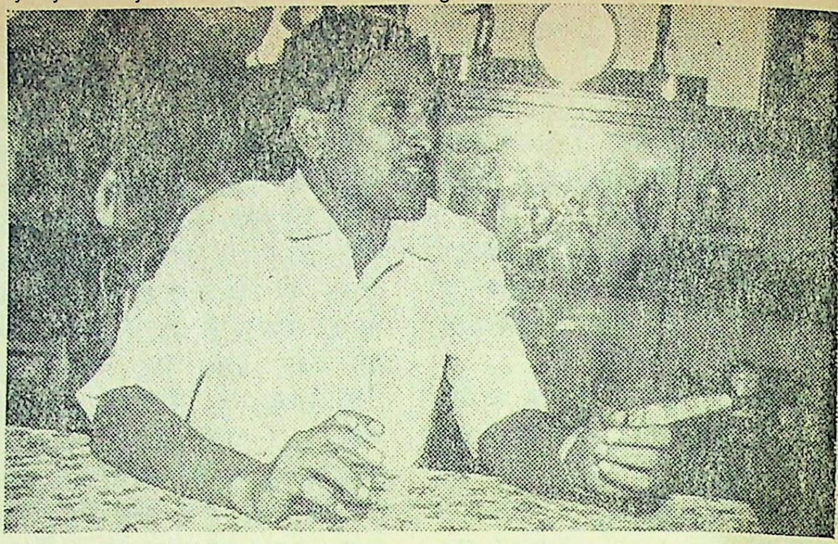

● कर्णसिंह चौहान : अच्छी आलोचना लेखक-पाठक की मदद करती है'



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए कहा गया कि ये कहानियां जीवन के प्रामाणिक अनुभव पर आधारित नहीं, केवल विचारधारात्मक प्रतिबद्धता के आधार पर लिखी गयी कल्पित कहानियां हैं, कि इनके पात्रों का चरित्र इकहरा है, कि उनके कार्यों का चित्रण अविश्वसनीय है, वगैरह-वगैरह.

**नमिता सिंह :** किसी हद तक ऐसा है भी.

**कर्णसिंह चौहान :** हो सकता है, मगर इन तमाम आरोपों के बावजूद इन कहानियों का स्वागत हुआ और ये चर्चित हुईं, इसकी क्या वजह थी, यह भी हमें देखना चाहिए. दरअसल, ये कहानी में लेखकों की चेतना में आये इस परिवर्तन को सामने लाती हैं कि जनता के जुझारू पक्ष को भी हमें सामने रखना है, जो अभी तक प्रायः नहीं रखा गया. यों होने को तो जीवन में तमाम चीजें होती हैं, लेकिन एक कहानी में सभी चीजें आती हैं क्या? कहानी में आपने जीवन के जिस एक पक्ष को चुना है, उसी पर आप ध्यान केंद्रित करते हैं. मैं यह सवाल नहीं कर सकता कि आप इसमें यह भी लाइए और वह भी लाइए. अगर आप नारी के आंदोलनकारी रूप को सामने लानेवाली कहानी लिखें और मैं कहूं कि इसमें उसका वेश्यावाला रूप तो आया ही नहीं, तो क्या मेरी यह मांग जायज होगी? इसी तरह कहानी के शिल्प को लेकर सवाल उठाये जाते हैं कि यथार्थवादी कहानी में फेंटैसी क्यों है, जैसे **रमेश** की **'कामधेनु'** या **'कल्पवृक्ष'** कहानियों में, या **उदय प्रकाश** की **'टेपचू'** में, या लोक-कथा की शैली में लिखी जानेवाली आज की कहानियों में— तो देखना यह चाहिए कि लेखक ऐसा क्यों कर रहे हैं, इन नये प्रयोगों की क्या जरूरत है. यह नहीं कि आपने यथार्थवादी कहानी की एक तस्वीर मन में बना रखी है, जिसके अनुरूप लगनेवाली कहानी तो यथार्थवादी, बाकी सब गैर-यथार्थवादी.

**भीष्म साहनी :** फिर भी मेरे खयाल से प्रामाणिकता की बात अपनी जगह...

**कर्णसिंह चौहान :** प्रामाणिकता की मांग सही है, लेकिन सवाल यह है कि इन कहानियों में प्रामाणिकता है या नहीं? कहानी की प्रामाणिकता हम एक खास तरह की चित्रण-पद्धति में देखते हैं या कहानी के द्वारा सामने आनेवाली वास्तविकता में? मसलन **रमेश बत्तरा** की एक कहानी है **'दूसरी मौत'**, जिसमें एक बहू अपनी कहानी कहती है जिसे जलाकर मार दिया गया है. क्या मरी हुई औरत अपनी कहानी कहने आ सकती है? बिल्कुल अविश्वसनीय बात है. लेकिन क्या यह कहानी हमारे समाज का एकदम सटीक यथार्थ-चित्रण नहीं करती? अनुभव की बात लें तो क्या **'सूरज कब निकलेगा'** की प्रामाणिकता हम इस आधार पर जाचेंगे कि **स्वयं प्रकाश** इस कहानी के पात्र भैराराम की तरह बाढ़ में कभी पेड़ पर टंगे रहे थे या नहीं?

**रमेश उपाध्याय :** अगर केवल चित्रण की पद्धति का ही सवाल हो तो हिंदी की सारी फिल्में प्रामाणिक मानी जायेंगी, भले ही उनमें यथार्थ जरा भी न हो.

**नमिता सिंह :** कहानी की शैली अंतर्वस्तु के हिसाब से बदलती रहती है. कभी-कभी कुछ परिस्थितियों का दबाव भी होता है, जैसे इमरजेंसी के दौर में कई लोगों ने कई तरह से कहानियां लिखीं. चीजों को काफी प्रतीकात्मक रूप में लिया. **असगर वजाहत** की उस दौर की छोटी-छोटी कहानियां इसका बहुत अच्छा उदाहरण हैं. और लोगों ने भी इस तरह के प्रयोग किये हैं. शिल्प में इधर बहुत बदलाव आया है, जैसे **रमेश उपाध्याय** की लंबी कहानियां हैं, **'कल्पवृक्ष'** जैसी प्रतीकात्मक कहानियां हैं, कई और कहानियां हैं जिनमें यथार्थ और प्रतीक दोनों को मिलाकर अपनी बात पर जोर देने का प्रयास इन्होंने किया है. इसी तरह **उदय प्रकाश** की **'टेपचू'** कहानी है, जिसके अंत की प्रतीकात्मक नाटकीयता कहानी के उद्देश्य को बड़ा मजबूत करती है. इस तरह इस बीच में लोगों ने कहानी में शिल्प के नये-नये प्रयोग तो किये ही हैं.

**रमेश उपाध्याय :** प्रयोग तो मेरा खयाल है, आज सभी सचेत कहानीकार कर रहे हैं. जैसे **शेखर जोशी** की एक बड़ी सांकेतिक कहानी **'संवादहीन'** अभी आयी है, **भीष्मजी** आजकल सच्ची घटनाओं पर आधारित **'जहूरबख्श'** जैसी कहानियां लिख रहे हैं, **मुद्राराक्षस** आमफहम अखबारी घटनाओं को, छोटे-छोटे ब्योरों पर अतिरिक्त जोर देकर कहानी में ढालने की कोशिश कर रहे हैं, जैसे उनकी कहानी **'दुर्घटना'** आयी है. **राजेश जोशी** कहानी में काव्यतत्व को प्रमुखता देकर कहानियां लिख रहे हैं, जो उनके संग्रह **'सोमवार और अन्य कहानियां'** में छपी हैं. इसी तरह की एक कहानी

**● रमेश उपाध्याय : कहानी समीक्षा की हालत कुछ अच्छी नहीं...**

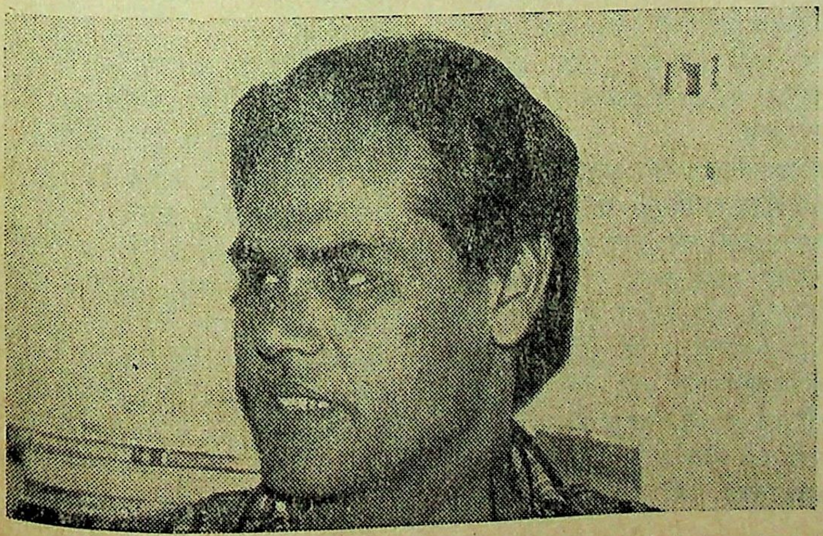

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**उदय प्रकाश** ने लिखी है **'मूंगा, धागा और आम का बौर'**. **शशांक** की भी ऐसी ही एक कहानी 'कोसाफल' इधर आयी है. **स्वयं प्रकाश** ने **'नंनसी का घूड़ा'** नामक एक कहानी लिखी है, जिसमें उन्होंने एक पशु के माध्यम से आदमी की बात कही है. **रमेश बत्तरा** ने 'लड़ाई है' में भाषा के स्तर पर एक प्रयोग किया है तो **'दूसरी मौत'** में कथ्य के स्तर पर. **विजयकांत** इधर **'मरीधार'** और दूसरी कहानियों में वर्गीय हिंसा के अपने विषय को बरकरार रखते हुए भी सांकेतिकता का इस्तेमाल कर रहे हैं. **पंकज बिष्ट** ने अभी यथार्थ में फैंटेसी मिलाकर **'खिड़की'** कहानी लिखी है. **हबीब कैफी** ने **'जमीन'** और दूसरी कहानियों में सांप्रदायिकता की समस्या को व्यापक आयाम देने के प्रयास किये हैं. **नमिता सिंह** की अभी-अभी एक कहानी आयी है **'गलत नंबर का जूता'** जिसमें बड़ी सामान्य पारिवारिक बातों को व्यापक संदर्भों से जोड़ने का प्रयास किया गया है. **रमाकांत, असगर वजाहत** और **माहेश्वर** ने इधर कुछ छोटी-छोटी नीति कथाएं लिखी हैं. कुछ लोग छोटी कहानियों में बड़ी बात कहने की कोशिश कर रहे हैं तो कुछ लोग लंबी कहानियों की जरूरत महसूस कर रहे हैं, जैसे **जगदंबा प्रसाद दीक्षित** की लंबी कहानी **'शुरुआत'** या **श्रीनाथ** की कहानी **'अपने हिस्से की आग'** और बहुत-सी अच्छी प्रयोगात्मक कहानियां गिनायी जा सकती हैं. इन प्रयोगों को देखकर लगता है कि समकालीन कहानीकार सचेत **रूप से** ऐसा कोई फार्म तलाश रहे हैं, **जिसमें** आज की बेहद जटिल **वास्तविकता** को यथार्थवादी ढंग से प्र**स्तुत किया जा** सके.

**कर्णसिंह चौहान : मतलब** यह कि यह जो नये फार्म **की तलाश** है, कहीं तो कथ्य के अनुसार **होती है** कि. . .

**भीष्म साहनी: कथ्य को** जिस रूप में कहानीकार ने **देखा है**. . .

**कर्णसिंह चौहान:** . . .और कहीं उसके लक्ष्य के अनुसार **भी** कहानी का शिल्प और **रूप** बदलता **है**—यानी इस बात से भी कि आप **किस** लिए लिख रहे हैं, किसके लिए लिख रहे हैं, आपका पाठक कौन है. आज कई लेखक यह प्रयास कर रहे हैं कि उनकी कहानी सिर्फ पढ़े-लिखे लोगों के लिए ही न हो, उनके लिए भी हो जो पढ़ नहीं सकते, जिन्हें कहानी सुनायी जा सके. यह जरूरत आज की कहानी में कई परिवर्तन करा रही है. जैसे लोक-कथाओं के शिल्प को इधर कई लेखकों ने अपनाया है. **असगर वजाहत** ने अपनाया है, **रमेश उपाध्याय** ने अपनाया है, अभी एक नये लेखक **महेश कटारे** की कहानी **'इतिकथा-अथकथा'** में लोक-कथावाला रूप सामने आया है. या जैसे **रमेश** की कुछ कहानियां इधर **'किसी देश के किसी शहर में'** सीरीज़ के अंतर्गत **'सारिका'** में ही छपी हैं, जिनमें शहरी जीवन को लोक-कथा के शिल्प में ढालकर चित्रित करने की और आज के यथार्थ को रूपकों के माध्यम से सामने लाने की कोशिश ये कर रहे हैं. अब मिथक हैं, प्रतीक हैं. . .

**नमिता सिंह :** भीष्मजी, आपने भी तो 'शोभायात्रा' में एक प्रयोग किया है. उसमें प्रतीकात्मक ढंग से आपने अपनी बात कही है.

**कर्णसिंह चौहान :** ऐसी कई कहानियां हैं. मसलन संजीव की कहानी है **'तीस साल का सफरनामा'**, एक बिल्कुल नये लेखक अशफाक की कहानी है **'लोक-यमलोक'**. और भी तमाम कहानियां हैं, . .

**रमेश उपाध्याय :** लेकिन अजीब बात है कि कहानी की रचना में तो इतना सब नया हो रहा है, पर कहानी-समीक्षा की हालत कुछ अच्छी दिखायी नहीं देती.

**नमिता सिंह :** मेरा खयाल यह है कि इस बीच हमारे पूरे राष्ट्रीय जीवन में शार्टकट की जो अपसंस्कृति पनपी है, उसका असर हमारे साहित्य पर भी पड़ा है. आलोचकों ने अपना धर्म नहीं निभाया. इसके पीछे एक तो है खेमेबाजीवाली बात कि आलोचक भी बंटे हुए हैं, लेखक भी बंटे हुए हैं. पर यह बात सही है कि कुछ नये आलोचकों की अच्छी आलोचना को छोड़ दें तो कहानी की अच्छी आलोचना बहुत कम हुई है. हमारे यहां सैद्धांतिक आलोचना ज्यादा होती है, व्यावहारिक आलोचना की तो जैसे परंपरा ही खत्म होती जा रही है. कहानी की आलोचना को आलोचकों ने बहुत गंभीर रूप से लिया है और मैं सोचती हूं कि इससे जो गैप इस दौर में आया है, उसके लिए इनको कभी माफ नहीं किया जायेगा. . . (बाकी सबकी हंसी). . .इसमें हंसने की बात नहीं. जैसे **नामवर सिंह** ने बहुत पहले एक बहुत ईमानदारी की बात कही थी—'मैं कहानियां बहुत कम पढ़ता हूं.' ऐसा लगता है कि अब भी वे बहुत कम पढ़ते हैं. एक शिकायत मुझे कथाकार-आलोचकों से है. मैं यह सोचती हूं कि कहानीकार को आलोचक नहीं बनना चाहिए, क्योंकि वह अपनी रचना को ही मानदंड मानकर दूसरों की रचना की बड़ी आत्मपरक समीक्षा करता है, जो समीक्षा कम एक पूर्वग्रह ज्यादा होती है. और जब **धीरेंद्र अस्थाना** या **बलराम** जैसे लेखक आलोचना लिखने लगते हैं, तब तो बहुत ही अजीब तरीके की आलोचना होती है. इन दोनों ने एक-एक सीरीज़ लिखी और ये अपनी हर किस्त में गणेश-पूजन की तरह पहले एक निश्चित प्रकार के कथाकारों पर जब तक कोड़े नहीं बरसा लेते थे, तब तक अपनी बात नहीं कहते थे. इससे एक तरह का पूर्वग्रह ही सामने आता है. ऐसी आलोचना से किसी को कोई लाभ नहीं होता.

**कर्णसिंह चौहान :** नामवर सिंह के बारे में तो अब एक ही बात कही जा सकती है कि गुजरे वक्तों के हैं ये लोग, इन्हें कुछ न कहो. और आपने जिन दूसरे लोगों के नाम लिये, उनके बारे में भी इतना ही कहना काफी है कि आलोचना करने के लिए नाम लेना ठीक नहीं, प्रशंसा अगर किसी की कर सकते हैं तो नाम लेकर कीजिए. दूसरी बात मैं यह कहना चाहता हूं कि कहानी-समीक्षा की मौजूदा हालत से संतुष्ट तो कोई

**पृष्ठ 74 पर जारी. . .**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# बहती हुई कोख

प्रियंवद

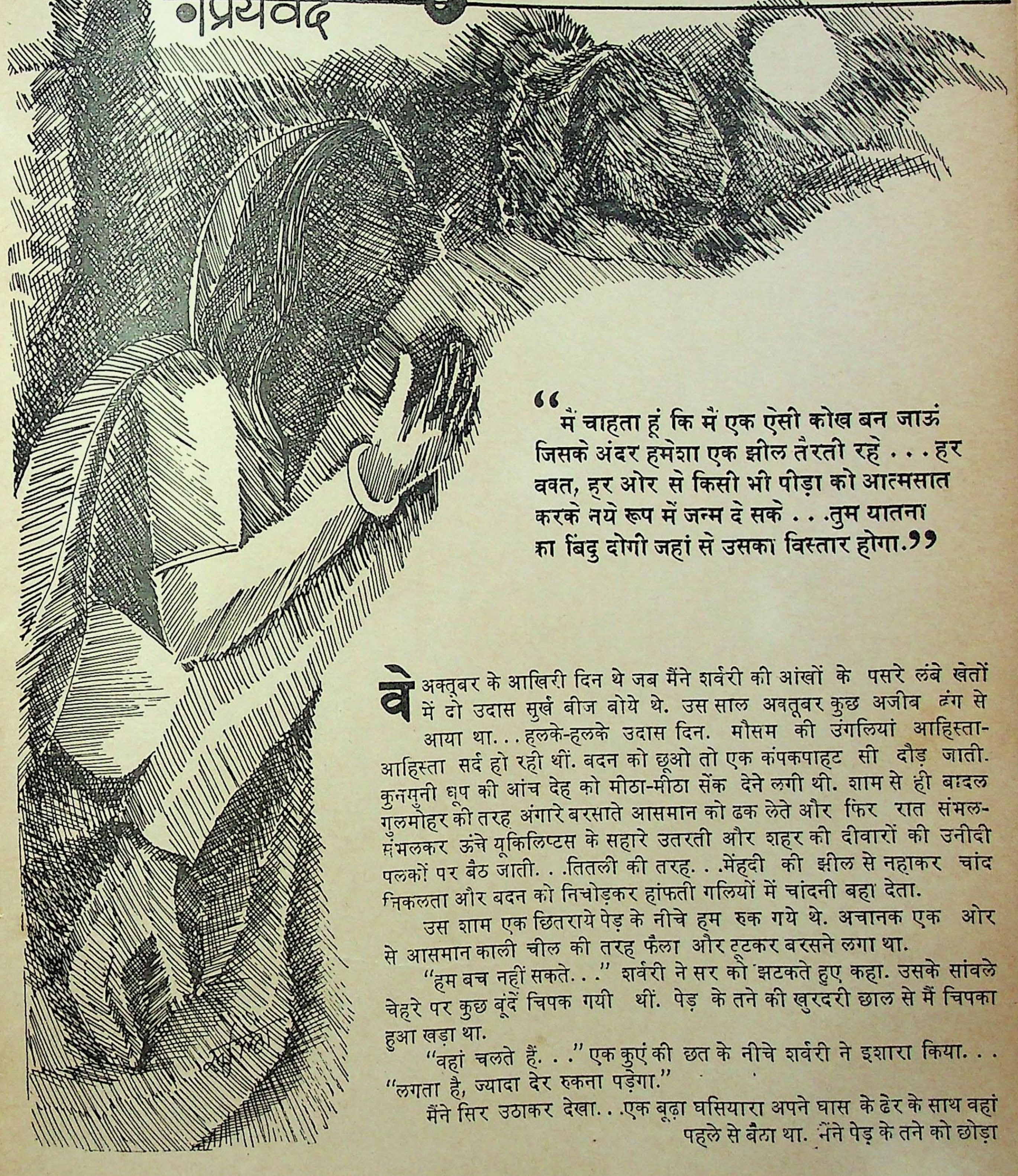

"मैं चाहता हूं कि मैं एक ऐसी कोख बन जाऊं जिसके अंदर हमेशा एक झील तैरती रहे . . . हर वक्त, हर ओर से किसी भी पीड़ा को आत्मसात करके नये रूप में जन्म दे सके . . .तुम यातना का बिंदु दोगी जहां से उसका विस्तार होगा."

वे अक्तूबर के आखिरी दिन थे जब मैंने शर्वरी की आंखों के पसरे लंबे खेतों में दो उदास सुर्ख बीज बोये थे. उस साल अक्तूबर कुछ अजीब ढंग से आया था. . . हलके-हलके उदास दिन. मौसम की उंगलियां आहिस्ता-आहिस्ता सर्द हो रही थीं. बदन को छूओ तो एक कंपकपाहट सी दौड़ जाती. कुनमुनी धूप की आंच देह को मीठा-मीठा सेंक देने लगी थी. शाम से ही बादल गुलमोहर की तरह अंगारे बरसाते आसमान को ढक लेते और फिर रात संभल-संभलकर ऊंचे यूकिलिप्टस के सहारे उतरती और शहर की दीवारों की उनींदी पलकों पर बैठ जाती. . .तितली की तरह. . .मेंहदी की झील से नहाकर चांद निकलता और बदन को निचोड़कर हांफती गलियों में चांदनी बहा देता.

उस शाम एक छितराये पेड़ के नीचे हम रुक गये थे. अचानक एक ओर से आसमान काली चील की तरह फैला और टूटकर बरसने लगा था.

"हम बच नहीं सकते. . ." शर्वरी ने सर को झटकते हुए कहा. उसके सांवले चेहरे पर कुछ बूंदें चिपक गयी थीं. पेड़ के तने की खुरदरी छाल से मैं चिपका हुआ खड़ा था.

"वहां चलते हैं. . ." एक कुएं की छत के नीचे शर्वरी ने इशारा किया. . . "लगता है, ज्यादा देर रुकना पड़ेगा."

मैंने सिर उठाकर देखा. . .एक बूढ़ा घसियारा अपने घास के ढेर के साथ वहां पहले से बैठा था. मैंने पेड़ के तने को छोड़ा



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कुएं की तरफ दौड़ पड़ा. . .शर्वरी भी दौड़ती आयी. बूढ़े की तरफ पीठ करके मैं कुएं की दीवार से सट गया.

"मौसम भी धोखा देने लगे. . ." शर्वरी बुदबुदायी और वहीं मेरे पास पसर गयी.

दूर खेतों पर एक सफेद पतली चादर रखी थी. हल्की-हल्की धुंध-सा पानी दिख रहा था. चारों ओर सन्नाटा तैरने लगा था. कभी कोई ट्रक दहाड़ता हुआ निकलता तो पानी में भीगी सड़क दर्द से ऐंठती और फिर एक थरथराहट के साथ खामोश हो जाती. कुएं की सूखी, चटकी हुई पुरानी दीवारें पानी में भीगकर अजीब से रंग की हो गयी थीं. बूढ़ा एक कोने में सिमटा हाथ-पैर समेटे ऊंघ रहा था.

"दुनिया में इससे बढ़िया कोई खुशबू नहीं होती. . .पानी की बूंद जब पहली बार मिट्टी में गिरती है. . .कच्चे भुट्टे की महक से भी तेज और सुंदर. . ." मैंने शर्वरी को देखा. उसके होंठ थोड़ा फैले. जेब में से उसने आधी इलायची निकाली.

"कल तुम नहीं आये थे. . .तुम्हारा हिस्सा रक्खा था."

मैंने हाथ बढ़ाकर इलायची ली और मुंह में रख ली. मुझे मालूम था कि आधी वह खा लेती है. यह एक ऐसी बात थी जिसके बारे में मैंने शर्वरी से कभी कुछ नहीं पूछा. मैं जानता था कि मेरे कुछ भी पूछने का मतलब है, इस बात को अचानक एकदम हल्का कर देना. . .रेत की तरह.

हम खेतों से लौट रहे थे. शहर से थोड़ी दूर. शर्वरी रिसर्च के सिलसिले में अक्सर आती थी यहां और मुझे साथ आना पड़ता था. उसके साथ-साथ भागते हुए, कीड़े पकड़ने के लिए. मैं सोचता था कि शायद कीड़े उसका पहला प्यार हैं और उसे सबसे ज्यादा खुशी इसी तरह से दी जा सकती है, जब उसे कोई बेहद अजीब कीड़ा दे दिया जाये. जिसे काटकर वह कुछ हासिल कर सके. उसने मुझे कई बार अपने कालेज की लैब में कीड़े काटकर दिखाये थे और मुझे यह देखकर बहुत हैरत हुई थी कि ज्यादातर कीड़े अंदर से बेहद रंग-बिरंगे, खूबसूरत होते थे. . .बिल्कुल वैसी ही हैरत जो मुझे शर्वरी के सांवलेपन को देखकर होती थी. एक भरा भरा बादल जैसे झुकता आया है. मैंने शर्वरी को कभी नहीं बताया लेकिन मैंने उसके लिए एक कविता भी लिखी थी. **'ओ सांवली. . .आओ तुम्हारे माथे के आसमान पर एक नाम लिख दूं. . .ओ सांवली, मौसम की महकती घाटियों से गुजरते-गुजरते एक रोज तुम्हारे बालों में कपास के फूल उगा आयेंगे. . . मेंहदीवाले हाथ सूखकर चटक जायेंगे और कांपते पांवों से तुम जा बैठोगी शाश्वत जाज्वल्यमान चिता पर. ओ सांवली. . . फिर देह का वह पुण्य हवन धीरे-धीरे तुम्हारा अस्तित्व पी लेगा. . .तुम्हारी रक्ताशोक की वेणी भी, मेरे चुंबन भी. . . लेकिन अतिरोहित यह नाम गंधमय यज्ञधूम बनकर पूरे आसमान पर छा जायेगा और लिख देगा कि एक नीली आंखोंवाले ने सांवली को प्यार किया था."**

"तुम सांप हो. . ." शर्वरी कहती थी.

"क्यों?" मैं हैरानी से उसे देखता.

"सांप की आंखों में जादू होता है. . .एक बार देखने पर वह आंखें बांध लेता है."

मैं खिलखिलाकर हंस देता. "और सांप खिलखिलाता भी है क्या?"

शर्वरी हंसती, "कितना बढ़िया नाम है. . .खिल-खिलाता हुआ सांप. . .तुम एक कहानी जरूर लिखना इस नाम की."

मेरे मुंह की इलायची खतम हो गयी थी. मैंने एक सिगरेट निकालकर जला ली. दीवारों पर लोगों के टेढ़े-मेढ़े नाम खुरचे हुए थे. शायद हमारी तरह अक्सर लोग यहां रुके होंगे. अचानक मेरे अंदर अजीब बेहूदा ढंग से बातें पैदा होने लगीं. मैंने सोचा, शर्वरी से कहूं कि हम भी अपना नाम लिख दें. . .या मैं उससे पूछूं कि वह मुझसे प्यार करती है या नहीं. . .या इस वक्त मेरे पास थोड़ी-सी ह्विस्की होती. . . फिर मुझे लगा कि यह सब फिजूल है सिवाय ह्विस्की वाले खयाल के. . .लेकिन वह फिलहाल पूरा नहीं हो सकता था. सिगरेट का धुआं थोड़ी दूर दीवार के ऊपर तैरता और फिर बाहर निकलते ही गायब हो जाता. बूढ़ा घसियारा कुछ गाने लगा था. अपनी भाषा में गांव का कोई गीत. उसके होंठों से टपकी एक बुदबुदाहट-सी धीरे-धीरे खेतों के ऊपर. . . अक्तूबर की शाम के ऊपर तैरने लगी थी. शर्वरी के आंखों के ऊपर संकरी पगडंडियां फैली थीं. . . .सपनों के लिए शायद.

"तुम कुछ कह सकते हो." अचानक शर्वरी बोली.

"क्या?"

"इस क्षण के लिए. . .केवल इस क्षण के लिए कोई बात."

मैंने सर घुमाकर देखा उसे. शायद वह मुझसे कोई गीत

लघुकथा

# उलटफेर

▣ नीलम कुलश्रेष्ठ

**वह एक सरकारी प्रतिष्ठान में सहायक अनुसंधान अधिकारी है. नौकरी को ढाई वर्ष ही हुआ है. वह प्रतिष्ठान से अपने सेकंड हैंड स्कूटर पर निकलकर पासवाले चौराहे तक पहुंच पाता है कि अचानक ही मोड़ पर 'प्रिया' पर बैठा कोई उसे हाथ देकर रोकता है! 'हीरो' स्टाइल का हेलमेट जब मुंह से उतरता है, तब वह पहचान पाता है, "अरे! यह तो रज्जू है."**

**"रवि, तुम कबसे हो इस शहर में?" वह आत्मविश्वास भरी आवाज में पूछता है!**

**"यही दो-ढाई वर्ष हो गये और तुम?"**

**"तुम्हारे शहर से पिताजी यहां ही तबादला होकर आये थे."**

**अब उसे याद आता है रज्जू का परिवार इसी शहर में आया था. तब रज्जू कैसा मरगिल्ला लगता था! छाती ऐसे दबी हुई थी जैसे पूरा पोषण न मिल पाने से चौड़ी होने की आकांक्षा लिये मन मसोसकर रह गयी हो. उसने इंटर साइंस में कॉलेज में टॉप किया था**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और यह आर्ट्स विषय लेकर भी फेल हो गया था. जब भी रज्जू उसके सामने पड़ता, एक गिजगिजी हीन भावना से घिरा रहता था. अब यह चौड़े सीनेवाला युवक उस रज्जू से कहीं मेल खाता है? उसे अच्छी तरह याद है. जब वह बी. एससी. फाइनल में पहुंचा था तब वह तृतीय श्रेणी में इंटर पास कर पाया था.

"अरे भाई! 'प्रिया' कहां से ले लिया? अपन तो अपना नंबर आने की राह देख रहे हैं. उसकी दृष्टि रज्जू के क्रीम कलर के चिकने नये 'प्रिया' को सहला-कर पूछती है.

"पूरे चौदह हजार में खरीदा है." कहते हुए उसकी गर्दन में एक बल पड़ जाता है.

वह याद करता है, इसके पिता की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि इसे ऐसा स्कूटर दिला सकें.

हालचाल लेने देने के बाद रज्जू 'हेलमेट' पहनकर स्कूटर स्टार्ट कर देता है. "मुझे जरा जल्दी है. कभी घर आओ यार!"

"ये तो बताओ, नौकरी कहां कर रहे हो?"

"आर. टी. ओ. (रोड ट्रांसपोर्ट ऑफिस) में क्लर्क हो गया हूं." कहते हुए वह सर्र से निकल जाता है. □

159 एच, रेलवे कालोनी, प्रतापनगर, बड़ौदा

---

सुनना चाहती थी. वह हमेशा ऐसे ही कहती, जब भी उसे कोई गीत सुनना होता. "कह सकता हूं. . .लेकिन केवल इस क्षण के लिए नहीं."

शर्वरी एकदम से उदास हो गयी. सिर झुकाकर उंगली से पत्थर पर बिखरे पानी में लकीरें खींचने लगी.

"कहो. . ." शायद वह अंदाजा लगा रही थी कि मैं क्या कहूंगा.

"तुम कभी सोचती हो, अपने किसी शाश्वत सुख के बारे में?"

शर्वरी ने सर उठाकर देखा, मुझे. शायद वह मेरी बात समझी नहीं.

"तुम्हारा सुख क्या है, यह जानती हो तुम. . .जीवन की पूरी यात्रा उसी की तो तलाश है ना. . ."

"हां. . .पर बहुत ज्यादा नहीं जानती."

"लेकिन मैं अपनी यात्रा को लेकर पूरी तरह सचेत हूं शर्वरी. . .वह सुख पाना ही मेरा अभीष्ट है. . .सबका होता है. . .लेकिन वह है क्या, यह लोग नहीं जानते. . . तुम भी नहीं. . .लेकिन मैं जानता हूं. . .स्पष्ट, बिल्कुल."

"क्या. . ." शर्वरी की आवाज कांपने लगी, "क्या है तुम्हारा सुख?" बाहर के पानी की परछाई उसकी आंखों में उतर आयी. कोहासे में तैरती एक सोने की नाव.

"दो में से कोई भी एक. . .या तो तुम्हारी देह, तुम्हारा मन, तुम्हारी आत्मा को भोगना या फिर तुमसे इतर एक अनंत यातना को जीना."

शर्वरी चुपचाप मुझे घूरती रही.

"मुझसे इतर कैसा सुख है तुम्हारा. . ." धीरे से फुसफुसायी वह.

"है शर्वरी. . .यातना बहुत विस्तार देती है. . .दृष्टि भी. . .सृजन का सुख यातना भोगने से ही जुड़ा है. . .अंदर जितना बड़ा नर्क होगा, उतना ही बड़ा स्वर्ग बाहर रचा जा सकता है. मैं चाहता हूं कि मैं एक ऐसी झील बन जाऊं जिसके अंदर हमेशा एक कोख तैरती रहे. . .हर वक्त, हर ओर से, किसी भी पीड़ा को आत्मसात करके नये रूप में जन्म दे सके. वह सुख भी अपरिमित है. . .हर वक्त एक मां होने का सुख और वह भी तुमसे ही जुड़ा है. . .तुम यातना का एक बिंदु दोगी जहां से उसका विस्तार होगा. . ." मैंने एक लंबी सांस ली. हवा थोड़ी ठंडी हो गयी थी. शर्वरी का चेहरा बिल्कुल सपाट हो गया था.

"क्या जरूरी है कि उस यातना की प्रतिक्रिया इसी तरह हो. . .सृजन में ही."

"नहीं. . .बिल्कुल जरूरी नहीं है. . ." मैं हंसा धीरे-से, "हो सकता है मैं बौद्ध भिक्षु बन जाऊं. . .हो सकता है नक्सलाइट बन जाऊं. . .लेकिन मैं जानता हूं स्वयं को. . . मैं जानता हूं कि मैं सिर्फ एक कोख बन जाऊंगा, जहां से जन्म देने का सिलसिला चलता रहेगा. ..सृजन का अनवरत सुख."

"और मुझे भोगने पर. . ."

"संतुष्ट सुअर का सुख. . . ." मैं फिर हंसा, "तब वह सुख होगा मेरा. . .बिल्कुल दूसरी दिशा का. . ."

शर्वरी फिर सिर घुमाकर बरसात देखने लगी. खेतों के ऊपर रात का धुंधलका गहराना शुरू हो गया था. . .या शायद बादलों की छाया थी. सड़कों पर पूरी तरह सन्नाटा उतर आया था. एक सिहरन-सी बदन पर बरसने लगी थी. . .चाबुक ऐसी. बूढ़ा घसियारा गाना बंद करके ऊंघ रहा था. थकान के पंजे उसके झुर्रीदार चेहरे पर गढ़े थे और उन गड्डों से उसकी उम्र बह रही थी.

"तुम परेशान हो गयीं. . ." मैं धीरे-से बोला.

"हां."

"क्यों?"

"कभी तुमने मांगा तो कौन-सा सुख दूंगी तुम्हें?"

"मैं अभी कुछ नहीं कहता शर्वरी. . .लेकिन बाद में कभी जरूर पूछूंगा कि तुमने ऐसा ही क्यों चाहा था?"

"सचमुच सांप हो तुम. . ." शर्वरी की आंखों में आंसू आ गये. . . मैंने धीरे-से हाथ बढ़ाकर शर्वरी की हथेली पर उंगली फेरी. .सर्द हथेली थोड़ा-सा कांपी. . .पसीने में भीगी हुई. कुछ आतंक-सा एक चिड़िया की तरह शर्वरी के चेहरे पर फुदक रहा था. जमीन से उठनेवाली गंध काफी देर पहले गायब हो चुकी थी. . .पानी भी कुछ कम हो गया था.

"हमें चलना चाहिए." मैंने शर्वरी का हाथ दबाया.

"अभी नहीं. . पानी रुक जाने दो." फिर उसने सिर घुमाकर बूढ़े को देखा. अचानक बूढ़ा घसियारा उठ गया. मिचमिची आंखों से उसने हमें एक बार देखा और फिर झुक-कर गठ्ठर उठाकर सर पर रख लिया. उसकी पतली काली



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टांगों से 'चट' की आवाज आयी, जो कुएं की दीवार पर छिपकली की तरह बैठ गयी, आहिस्ता-आहिस्ता वह एक ओर को लुढ़क गया. शर्वरी थोड़ा सहज हुई. मैं भी महसूस कर रहा था कि उस बूढ़े की उपस्थिति को लेकर वह आश्वस्त नहीं हो पा रही थी.

"सुनो. . ."शर्वरी धीरे-से मेरे और पास आ गयी, "असली बात तो हुई नहीं.. ."

"क्या?"

"वही. . .कोई ऐसी बात जो सिर्फ इस क्षण के लिए हो. . ." उसके होंठ कांप रहे थे. . .नदी के किनारे की तरह. मैंने धीरे-से हाथ बढ़ाकर शर्वरी को सीने पर खींच लिया.

"सुनोगी?"

"हां. . ." फुसफुसायी वह और मुझसे सिमट गयी. मैंने अपने होंठ उसके बालों पर फेरे. . ."ओ सांवली, आओ. . ." मेरे सीने पर दो गर्म बूंदें गिरीं. मैंने शर्वरी के बाल पकड़कर उसका सिर खींचा. . .वह बेतरह रो रही थी.

"लो. . .नाम लिख दो. . ." शर्वरी ने अपना माथा ऊंचा किया. . .मैंने झुककर उसका माथा चूम लिया. . .और फिर बारी-बारी से उसकी दोनों आंखों को अपने होंठों में दबा-कर सोख लिया.

"सुनो. . ." शर्वरी की आवाज कांपी. "कहीं भी गीली आंख देखना, समझ लेना, एक चट्टान रिस रही है. . .अखंडित आस्था की. . ." शर्वरी ने आंख भरकर मुझे देखा. . .जिंदा सांस लेती हुई आंखें. . .एकदम से फिर उठ गयी वह.

"चलो. . ."

मैं भी धीरे-से उठ गया. पानी बंद-सा हो रहा था. करीब-करीब अंधेरा घिर आया था. हम दोनों धीरे-धीरे कच्ची मिट्टी पर पांव रखते हुए सड़क पर आ गये. एक मौन खरगोश के बच्चे की तरह हमारे पांवों के साथ-साथ चल रहा था और पीछे रह गया था एक काल-खंड. . .जिसमें मैंने शर्वरी की आंखों के अंदर पसरे लंबे खेत में दो चुंबन बो दिये थे. . . कभी जिनकी फसल भी उगेगी. . .इसी विश्वास से.

उसके बाद कई अक्तूबर आये.

शाम को घरों से धुआं निकलता और खिड़कियों से होता हुआ सफेद चिड़िया की तरह पेड़ों की फुनगियों पर जा बैठता. हल्के-हल्के कांपते हुए अंधेरे में शहर समय से पहले ही खामोश होकर सिकुड़ने लगते. धूप में बैठकर बियर पीने और रातों को मसालेदार मांस के दिन लौटने लगे थे. और किसी के साथ एक भरा-भरा बादल संवलाया-सा मेरे पंजों से आहिस्ता-आहिस्ता ऊपर चढ़ने लगता.

शर्वरी मुझे यातना का बिंदु दे गयी थी. शर्वरी ने ऐसा क्यों किया, मैं पूछ नहीं पाया. शर्वरी मुझे मिली ही नहीं. अपनी रिसर्च के सिलसिले में वह दूसरे शहर गयी थी. कुछ दिन बाद मुझे पता लगा कि उसने वहीं अपने प्रोफेसर से शादी कर ली. यह खुद मुझे शर्वरी ने नहीं बताया. शर्वरी ने फिर मुझसे कभी कोई बात भी नहीं की. . .कुछ लिखा भी नहीं. बस हर साल एक तय दिन मेरे पास एक पैकेट आता था उसमें सिर्फ इलायची आधी होती थी. हर दिन के हिसाब से एक. . .शर्वरी का अस्तित्व इतने से ही मुझे पता चलता रहता.

मेरी स्वयं की यात्रा जारी थी. जैसा कि मैं जानता था, मैंने शर्वरी को यातना को अपने लिए संजीवनी की तरह इस्तेमाल किया. मैं यह नहीं चाहता था कि मैं अपने अंदर की इस ऊर्जा को ऐसे ही मर जाने दूं. मेरे लेखन की शक्ति वही यातना थी. वैसे भी उस यातना की प्रतिक्रिया केवल अपने लेखन से ही बाहर कर सकता था और केवल यही बात मुझे शेष भी रख सकती थी. . . जड़ होने, विक्षिप्त होने या फटने से बचाने के लिए. मैं पूरा का पूरा एक कोख बन गया था. . .बहती हुई कोख जो हर क्षण किसी भी यातना को आत्मसात करके कुछ नया जन्म देना चाहती और सृजन, का सुख भोगती. अब मैं अपनी इस यातना का महाविस्तार चाहता था. . .एक समुद्र की तरह जो दूसरों की नदी-सी बहती पीड़ा को भी अपने में खींचकर स्वयं को और विस्तृत कर सके और उसकी पीड़ा को आवाज दे सके. . .

झोला लटकाये दो साल तक मैं लगातार घूमता रहा. खुली हथेलियों में अद्‌भुत तितिक्षा लिए. . . मैदानों में, पहाड़ों में, गांव में. . .बाढ़ सूखा, अकाल, दंगा, महामारी, जहां भी मुझे लगता कि एक सैलाब फैला है, पीड़ा का, मैं खुद को झोंक देता वहां. . .अपने दुख से जोड़ता हुआ. मैं देखता कि किस कदर लोग अपनी आंखों के अंदर जंगली झाड़ी की तरह उगी यातनाएं लिये जी रहे हैं. . .अपने कंधों पर उसके पहाड़ उठाये हुए. देह की, मन की, विचारों की आत्मा की, अस्तित्व की अंतहीन पीड़ा. मैंने पहली बार महसूस किया कि यातना की कोई स्वतंत्र परिभाषा नहीं होती. वह तो संदर्भ से व्याख्यायित होती है और इस तरह मेरे लिए शर्वरी का संदर्भ बहुत ही छोटा हो गया था. कितने विशाल दुख आद-मियों के अंदर मकड़ी के जालों की तरह गुथे रहते थे और बाहर मांस के लुथड़ों के ऊपर आंख कान और होंठ खुदे रहते थे.

समाज. . .राजनीति. . . व्यवस्थाएं. . . धर्म. . . देह से झरती हुई यातनाएं सांपों की तरह आदमी के अस्तित्व को निगलती रहती हैं. अपरिमित. . .अनामा. . .अदृष्टा लेकिन नुकीले पंजों की तरह हर क्षण आत्मा को खरोंचती हुई. मेरे अंदर की बहती कोख तब दर्द से ऐंठने लगती और मेरे अंदर से फटकर कोई गीत या कथा बाहर आ जाती और मैं मुक्ति की एक गहरी सांस लेता. मैं तब एक अनकहे सुख से लसलसाने लगता. . .वही सुख जो मेरा अभीष्ट था. . . मेरे जीवन की यात्रा का. वह सुख ऐसा कोण था, जहां मैं आहिस्ता-आहिस्ता महसूस करने लगा था कि अंदर नर्क होते हैं. . . लाखों करोड़ों के अंदर होते हैं और एक सतर्क स्वस्थ दृष्टि ही उस नर्क से बाहर स्वर्ग रच सकती है. . .उस नर्क का भी इस्तेमाल कर सकती है. एकांत में बैठना बूंद-बूंद करके उस जमी हुई यातना को चूसना, अमृत का सुख देता है. यह सिर्फ एक शिल्प है जिंदा रहने का जो अगर आ जाये तो जीवन स्वयं की हथेली में कैद हो जाता है.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी बीच मुझे पहली बार शर्वरी का पत्र मिला कि वह मुझसे मिलना चाहती है. . .अगर मैं आ सकूं तो उसके शहर आ जाऊं. मुझे अभी तक अपने सवाल का जवाब नहीं मिला था. हालांकि उस सवाल का अब कोई महत्व नहीं था लेकिन तब भी मैं शर्वरी की दृष्टि समझना चाहता था. . .उसने ऐसा क्यों किया, जबकि उसके अंदर वही चट्टान रिस रही थी. . .अखंडित आस्था की. एक मोह यह देखने का भी था कि शर्वरी की आंखों में जो सुर्ख बीज मैंने बोये थे, उसकी फसल जिंदा है या सूख गयी है. मैंने शर्वरी को लिख दिया कि मैं आ रहा हूं. करीब तीन साल के अंतराल के बाद मैं शर्वरी को देखने जा रहा था.

एक हल्की उजास वाली सुबह मैं शर्वरी के घर पहुंचा. छोटा-सा, खुला-खुला घर. . .पीले मेरीगोल्ड की क्यारियों से घिरा. शर्वरी ने ही दरवाजा खोला. एक क्षण वह मुझे देखती रही. उसका माथा आज भी उसी तरह आसमान जैसा फैला था. आंखों के नीचे हल्का-हल्का कालापन तैरने लगा था. चेहरे पर वैसे ही पैना सांवलापन था. उसके होंठ थोड़ा कांपे. . . मुझे लगा, शायद वह कुछ कहना चाहती है, लेकिन उसका गला भर आया है. धीरे-धीरे उसकी आंखों में पानी आ गया.

"मैं जानता था, तुम ऐसे ही मिलोगी. . .रोती हुई, अमरु की नायिका की तरह. . ." धीरे-से हंसा मैं. शर्वरी एक ओर हट गयी. मैं अंदर आया और उसने दरवाजा बंद कर दिया.

"कैसे हो तुम. . ." धीरेसे फुसफुसायी वह. गर्म सांस-सी मेरे गले से लिपट गयी. हाथ बढ़ाकर शर्वरी ने मेरे बालों को छुआ. मुझे लगा कि उसकी हथेली की खाल सिकुड़कर थोड़ी ढीली हो गयी है. मैं एक कोने में बैठ गया. . .छोटा-सा कमरा. . .कोशिश करके सजाया हुआ.

"प्रोफेसर कहां हैं?" मैंने पूछा.

"कालेज में. . ." शर्वरी मेरे पास ही बैठ गयी, "दोपहर तक आते हैं. . .

"तुम रुकोगे न?"

"कहां. . .?"

"यहां, मेरे पास. . ."

"बस एक कप चाय पीने के लिए. . ."

शर्वरी का चेहरा सफेद हो गया. चुपचाप मुझे देखती रही वह.

"सच कह रहा हूं. . ."

शर्वरी कुछ नहीं बोली, लेकिन मुझे लगा कि उसे अंदर से बेहद तकलीफ हो रही है. एक हल्की कंपकंपी-सी हुई उसे. खिड़की से दूर नीम के पेड़ दिख रहे थे. . .हवा में हिलते तो उसके पीले फूल टूटकर बिखर जाते. मैं शांत था और मेरी पूरी कोशिश थी कि मेरा संयम बना रहे. मैं शर्वरी से ऐसा कुछ भी न कहूं कि वह परेशान हो या उसे मेरे साथ किये गये अपने किसी अपराध का बोध हो.

"अच्छा. . .तुम्हें अचानक क्यों याद आयी मेरी?"

"क्या तुमको लगता है कि अचानक याद आयी?"

"नहीं. . .पर इतने दिन बाद क्यों लिखा?"

"डर था. . ." शर्वरी दीवार से सिर टेककर जमी आंखों से मुझे देखने लगी, "पता नहीं तुम क्या कर रहे हो. शायद बौद्ध भिक्षु बन गये हो या नैक्सलाइट. . .या शायद नफरत करने लगे हो मुझसे. . .लेकिन तुम्हारा लिखा हुआ जो कुछ भी पढ़ती रही तो लगा कि शायद तुम वही बन गये हो, जो तुम चाहते थे. . .तुम्हारे हर शब्द से एक अदृश्य दुःख बहता था जो कभी भी, किसी का भी हो सकता था. . . फिर मुझे लगा कि मैंने गलत नहीं किया और तुम आओगे अगर मैं बुलाऊंगी. . .फिर एक रात बेहद पानी गिरा. . . सारी रात मैं खिड़की पर बैठी वह खुशबू निगलती रही और मुझको लगा कि मेरे माथे पर जो नाम लिखा था, तुमने वह मेरे पूरे बदन पर फैल रहा है. . .उसी रात मैंने तुम्हें लिखा आने के लिए. . ." शर्वरी की आवाज टूट गयी थी.

कमरे में एक सन्नाटा-सा जम गया. ऊपर रोशनदान के बाहर आसमान का एक नीला टुकड़ा खिंचा था. एक परिंदा पूरी ताकत से उसको मथने में लगा था. लट्टू की तरह घूमते हुए कभी उसकी चीख कमरे के अंदर आती और एक छाते की तरह हर चीज के ऊपर तन जाती.

"क्या करते हो अब?" शर्वरी ने धीमे-से पूछा. . . हांफती हुई आवाज. मैंने शर्वरी को देखा. उसकी उंगलियों के नाखून के अंदर मैल-सा जम गया था और पांवों की एड़ी की खाल फटकर काली हो रही थी.

"व्यापार करता हूं. . .तुमने जो पीड़ा दी, उसी को इकट्ठा करके इस्तेमाल करता हूं..अपने सृजन में. . .अब सब कुछ एक नदी की तरह बहता है. . .जानती हो शर्वरी, यातना बहुत गहराई देती है. . .विस्तार भी और दृष्टि भी. इतिहास में देखा हो तुमने. . .तपस्या के पीछे यही विचार होता था. . .मैं भी यही करता हूं. . .तुमने सिर्फ एक दिशा की यातना दी और दूसरे आयाम मैं बटोरता हूं. . .बड़ा सहज लगता है अब सब. . .बल्कि अब अगर कभी जीवन में कुछ सुख भोग लेता

● व्यंग्यचित्र : चंदर

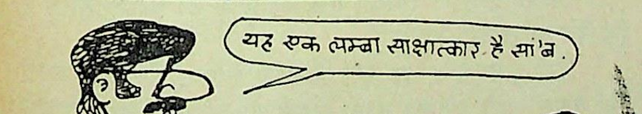




CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## लघुकथा

# संतोष

● सविता चिचालकर

आसपास नजर दौड़ाकर देखा, कहीं कोई रिक्शा नजर नहीं आ रहा था. इतनी दूर पैदल कैसे चला जायेगा? वैसे हूं तो मैं हृष्ट-पुष्ट पर जाने क्यों भला-चंगा होते हुए भी मैं पैदल नहीं चलना चाह रहा था. वैसे यहां से स्टेशन कोई खास दूर नहीं है. मैं वहीं चौराहे पर खड़ा रहा. उस समय एक रिक्शा आता दिखाई दिया. मेरी सांस में सांस आयी वरना खामखाह चलना पड़ जाता. पास आने पर मैंने देखा कि रिक्शा चालक है एक छोटा-सा लड़का. उम्र होगी यही कोई तेरह-चौदह के आसपास. पास आकर उसने आशा भरी नजरों से मेरी ओर देखकर कहा, "कहीं चलना है क्या बाबूजी!"

"चलना तो है मगर..."

"मगर क्या बाबूजी?"

"दरअसल मैं सोच रहा था कि तुम चला सकोगे कि नहीं और मुझे तो स्टेशन चलना है. न जाने क्यों उसे देखकर मुझे उसपर दया आ गयी.

वह निराश हो गया. वह हाथ आयी सवारी को यूं ही छोड़ना नहीं चाहता था. पूरे आत्मविश्वास के साथ उसने कहा "बाबूजी, आप स्टेशन की बात करते हैं. मैं तो उससे भी दूर जा चुका हूं. दिखने में छोटा हूं तो क्या, हिम्मत मेरी छोटी नहीं है."

पर मैंने स्पष्ट देखा कि वह निहायत ही दुबला-पतला लड़का है. उसे काफी मेहनत लगेगी स्टेशन तक ले जाने में. मन में खयाल आया कि नहीं जाना चाहिए मुझे. आखिर बेचारा कैसे खींचेगा मुझ जैसे भारी-भरकम को. तभी अचानक मुझे यहां से स्टेशन की दूरी का खयाल आया. मैंने सोचा ओह, इतनी दूर पैदल चलना. इतनी गर्मी में पैदल चलने के खयाल ने तो जैसे पैर जकड़ लिये हों और मैं रिक्शे में धम्म से जा बैठा अपनी मेहनत बचाने के लिए. पर लड़के की आंखों में एक प्रकार का संतोष था. □

● विकास नगर, जी-2/4 विलासपुर-295001

---

हूं तो कुछ खोने जैसा लगता है... बस, इसी तरह एक-एक क्षण अलग-अलग जीते हुए बह रहा हूं."

"तुम आज भी वैसे ही हो. . .अकेले और उदास."

"नहीं. . .वैसा ही मुक्त और निश्चित."

"तुम पूछोगे नहीं, मैंने ऐसा क्यों चाहा था?" शर्वरी मुस्करायी. पतझर की पीली पत्ती जैसी हंसी.

"चलो, अंदर चलते हैं." मैं उठ गया, "तुम चाय बनाओ, मैं वहीं बैठूंगा."

शर्वरी उठ गयी.

"आओ, पहले एक चीज दिखाऊं. . .एक छोटे से कमरे में ले गयी वह मुझे, "देखो. . ." उसने एक ओर इशारा किया.

पलंग के कोने में एक छोटा-सा बच्चा सो रहा था. शर्वरी का चेहरा एकदम से भर गया था—मां की गरिमा से. धीरे से बढ़कर मैं पलंग तक आया और झुककर उस बच्चे का माथा चूम लिया. . .हल्का-सा कुनमुनाया वह.

"महक आती है इससे. . ."

"हां. . ." शर्वरी हंसी.

"लड़का है?"

"हां."

"लड़की होती तो अच्छा था. . . तब मैं इसे ज्यादा प्यार करता."

"मैं भी यही सोचती हूं," शर्वरी मुस्करायी, "आओ चलें. . ." मैं शर्वरी के साथ बाहर निकल आया.

किचन में पहुंचकर शर्वरी चाय बनाने लगी. मैं वहीं देहरी पर बैठ गया. धूप का एक पंजा मेरे बदन पर सरकने लगा. मैंने एक सिगरेट निकालकर जला ली.

"तुम रुको तो मैं तुम्हें कुछ बनाकर खिलाऊं. .वह सब जो तुम्हें अच्छा लगता है."

"क्या?"

"मशरूम सूप. . .बेक्ड वेजीटेबल. . .और कोई नयी चीज हो तो. . ."

"नहीं," मैं जानता था कि वह ऐसा क्यों कह रही है. उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह किस तरह मुझे कोई सुख दे. . .या शायद कोई प्यार.

"तुम्हारी रिसर्च का क्या हुआ." मैंने यूं ही पूछ लिया.

"पलंग पर देखी तो थी अभी." हंसी शर्वरी और पानी चढ़ाकर मेरे पास ही बैठ गयी. आग की बदबूदाहट छोटे से किचन में गूंजने लगी. माथे के बाल खींचकर शर्वरी ने कान पर लपेट लिये. धीरे-धीरे फिर गंभीर हो गयी.

"कभी तुम्हारा लिखा कुछ पढ़ती हूं तो संतोष होता है कि मैंने गलत नहीं किया."

"हां. ..तुमने गलत नहीं किया शर्वरी. . .मैंने अब जाना कि तुमसे जुड़ी यातना बहुत छोटी थी. . .और अब सोचता हूं कि शायद तुमसे जुड़ा सुख भी बहुत छोटा होता."

"मैं जानती थी. . .इसीलिए मैंने यह किया."

"क्या?"

"यही. . .एक संतुष्ट सुअर का सुख इंसान कितनी देर भोग सकता है. . .तुमने यही कहा था न. . .मैंने समझ लिया था. . .अगर तुम मेरी देह, मेरा मन, मेरी आत्मा भोगते तो वह सुख तुम्हारी यात्रा का अंत होता. .और मुझसे इतर जो जीवन तुम जीते, वह तुम्हारी यात्रा की शुरुआत. . .और इतनी जल्दी तुम्हारे जीवन की यात्रा खत्म हो जाये, मैं नहीं चाहती थी. . .कोई खोज चलती रहे. . .जीवन नदी की तरह बहता रहे, इसी में उसकी सार्थकता है. . ." शर्वरी की उंगली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे पंजों की नसों पर रेंग गयी थी. "बस इतनी-सी बात थी." दो बूंद मेरे पंजे पर गिरी. "मैं तुम्हें समाप्त करना नहीं चाहती थी."

"शर्वरी?" मेरे होंठ कांपे. शर्वरी ने सिर उठाया. बिल्कुल गीली आंखें. थक गयी थी वह. मैंने पहली बार देखा कि उसकी खाल के नीचे कोई बहुत बेचैन औरत है. . .दम तोड़ती हुई. धीरे से उठकर मैंने शर्वरी की आंखें अपने होंठों में दबा लीं. पानी सोख लिया उनका.

बिल्कुल वैसा ही स्वाद था आंखों का. . .अक्तूबर की उसी शाम जैसा.

"तुम वैसी ही हो." मैं बड़बड़ाया.

शर्वरी एकदम से उठी और चाय बनाने लगी. मैं फिर चुपचाप दीवार से सटा बैठा सिगरेट पीने लगा. धूप का पंजा आहिस्ता-आहिस्ता मेरे ऊपर रेंगता रहा. चाय बनाकर शर्वरी ने मुझे दी और फिर मेरे पास बैठ गयी.

"तुम दुबले हो गये हो और काले भी. . .ठीक रहते हो?"

मैं हंसा धीरे से, "मैं तुम्हारी तरह पूरी मां नहीं बना. . . सिर्फ एक कोख रह गया हूं बस. . .इसीलिए." मैं चाय पीने लगा.

शर्वरी कुछ नहीं बोली. चुपचाप सिर झुकाये फर्श पर उंगली फेरती रही. एक पुल तना था हम दोनों के बीच. हमारी पुरानी संवेदनाओं का पुल जो आज भी पूरी तरह जीवंत था और जिस पर होकर हम पूरी तरह एक दूसरे के अंदर जी रहे थे.

"कैसा लगता है यह जीवन, शर्वरी?"

"पता नहीं, मैंने कभी सोचा नहीं."

"और बच्चा?"

"उससे जरूर सुख मिलता है. नाम अभी नहीं रक्खा. . . तुम्हारे लिए छोड़ दिया है."

"हूं. . ."

"क्या तुम सचमुच नहीं रुकोगे?"

"नहीं. . ."

"कहां जाओगे?"

"वापस. . .अपने शहर. . ."

"अच्छा सुनो." शर्वरी ने सर उठाया, "तुम कह सकते हो कोई बात जो केवल इस क्षण के लिए हो." वही पुराना तरीका था शर्वरी का गीत सुनने का. मुझे हैरानी हुई कि वह भूली नहीं थी.

"सुनोगी?"

शवरी ने सर हिलाया. मैंने धीरे-धीरे सुनाना शुरू किया, **"मीत. . .तुम समुद्र की तरह उठो. . .मैं बादलों की तरह झुकूंगा और तुम्हारी आंखें को सोख लूंगा. . .अपने जीवन के विस्तार के लिए."**

शर्वरी सुबकने लगी. मेरी चाय खत्म हो गयी थी. मुझे लगा कि मुझे अब चल देना चाहिए. मैं उठ गया. शर्वरी ने चौंककर देखा मुझे.

"चलूंगा अब."

# ग़ज़ल

**▣ रामदरश मिश्र**

**खबर मुझे भी नहीं, मुझको नशा है कोई,**
**मेरे भीतर जमीन की महक-सा है कोई.**

**फटी जेबों में हाथ डाले हुए गाने लगा,**
**कहीं मजबूरियों में खिल के हंसा है कोई.**

**जब भी होता हूं अकेला मैं सोचने लगता,**
**मेरी दशा-सी कहीं और दशा है कोई.**

**कांटे चुभ-चुभ के हथेली में फिसल जाते हैं,**
**दिल की गहराइयों में फूल धंसा है कोई.**

**टूटती नींद, टूटता मैं, टूटते शीशे,**
**टूटता है न ख्वाब मुझमें बसा है कोई.**

---

"रुको, अच्छा. . .अभी आयी मैं. . ." शर्वरी उठी और अंदर चली गयी. लौटी तो गोद में बच्चा था.

"लो." उसने हाथ बढ़ाकर आधी इलायची दी मुझे. "आज का हिस्सा."

मैंने हाथ बढ़ाकर इलायची ली और मुंह में रख ली.

"इस बच्चे से कुछ नहीं कहोगे?"

मैंने धीरे-से बच्चे के सिर पर हाथ रक्खा. मैं कुछ कहना चाहता था लेकिन भीतर से मेरा गला भर आया. . .कुएं की तरह.

"बोलो. . ." शर्वरी की आंखें भीग गयीं.

मैंने झुककर बच्चे का माथा चूमा और उसके कान में फुसफुसाया दिया, "कहीं भी कोई गीली आंख देखना तो समझ लेना कि एक चट्टान रिस रही है. . .अखंडित आस्था की. . ."

"और मैं. . .मैं क्या चाहूं तुम्हारे लिए. . ."

"यही कि मुझे अनवरत यातना मिलती रहे. . .अपने लेखन के लिए. . .संजीवनी की तरह. . ."

शर्वरी ने मुझे जकड़ लिया. अचानक उसकी आंखें जंगली हो गयीं. मेरे गले में दांत धंसा दिये उसने, "आज भी सांप हो तुम. . ."

फूट-फूटकर रोने लगी वह.

मैंने धीरे से हाथ बढ़ाकर अपने को छुड़ाया और बाहर निकल आया.

एक सुर्ख लहलहाती फसल शर्वरी की आंखों के पसरे खेतों से निकलकर मेरे साथ साथ चल रही थी. ☐

**● 15/269 सिविल लाइंस कानपुर-208001, प्र.उ.**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# देहरादून रे देहरादून

• रवींद्रनाथ त्यागी

**ये जो त्यागीजी हैं . . . कभी देहरादून के निवासी थे. यह जानकारी भी देहरादूनवाले नहीं, खुद त्यागीजी देते हैं . . . क्योंकि जिस तरह ये देहरादून के बारे में कुछ नहीं जानते . . . उसी तरह देहरादूनवाले भी इनके बारे में सचमुच कुछ नहीं जानते . . .**

देहरादून एक नगर का नाम है जो कि पृथ्वी नामक ग्रह के उत्तरी गोलार्ध में स्थित एशिया नामक महाद्वीप के भारत नामक देश में, उत्तर प्रदेश नामक राज्य के उत्तरी भाग में भली-भांति स्थित है. जैसे पृथ्वी के अनेक नाम हैं उसी प्रकार भारत व उसके राज्यों के भी अनेक नाम हैं. कान्वेंट के बच्चे भारत माता को 'मदर इंडिया' कहकर पुकारते हैं तो पिछड़े लोग इसे कभी-कभी हिंदोस्तान तक कह डालते हैं. कवि ने कहा था कि हिंदोस्तान जो है वह अपनी बुलबुलों की वजह से सारे संसार में सर्वश्रेष्ठ है. . .'सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा, हम बुलबुलें हैं इसकी, यह आशियां हमारा.' इस महत्त्वपूर्ण सूचना को देने के बाद कविजी जो थे वह स्वर्ग सिधार गये और बुलबुलों को यहां छोड़ गये. हिंदोस्तान मुल्क की तरह इसके जो नगर हैं, राज्य हैं, और जनपद हैं, वे भी अपने नाम बदलते रहे. बनारस, पूना और बड़ौदा रातो-रात, वाराणसी, पुणे और वडोदरा हो गये. रुहेलखंड, विदर्भ और पांचाल देश ने अपना नाम बदल लिया और दिल्ली ने नाम ही क्या, अपने स्थान तक सदा बदले और इस तत्परता के साथ बदले कि देश का सारा इतिहास मात्र दिल्ली के पुराने स्थान पर से उजड़ने और नयी जगह पर बसने का ही नाम रह गया. मगर जहां चारों तरफ यह होता रहा वहां देहरादून ने अपना नाम या स्थान कभी नहीं बदला. वह पहले भी देहरादून कहलाता था, अब भी देहरादून कहलाता है और जहां तक मेरी निगाह काम करती है, वह भविष्य में भी देहरादून ही कहलाता रहेगा. वह वहीं स्थित है जहां कि पहले स्थित था. उसने अपना स्थान नहीं छोड़ा, वह वहीं पहाड़ों से घिरा हुआ खड़ा रहा जहां कि वह सदियों से खड़ा था. इत्तफाक की बात देखिए कि वे पहाड़ी भी जिनके बीच में देहरादून स्थित है, अपनी उसी पुरानी जगह पर खड़े रहे जहां कि वे इस रचना के लिखे जाने से पहले खड़े थे. इतने चरित्रवान नगर की चर्चा करना जरूरी होगा. इकबाल एक बड़े कवि थे क्योंकि वे हाईकोर्ट के जज थे और 'सर' का खिताब रखते थे, और इसी कारण उन्होंने पूरे हिंदोस्तान की चर्चा की थी. मैं एक छोटा कवि हूं क्योंकि न तो मैं हाईकोर्ट का जज हूं और न मुझे 'सर' का खिताब ही मिला है और इस कारण यह उचित ही होगा कि मैं देहरादून की चर्चा करूं. जैसे कुछ लोग प्रांत या क्षेत्र के स्तर से कभी ऊपर नहीं उठ पाते, हालांकि वे कहलाते देश के नेता हैं, ठीक उसी प्रकार मैं भी नगर के स्तर से कभी ऊपर नहीं उठ पाता हालांकि . . . मैं सारी हिंदी-भाषी जनता का लेखक हूं. हिंदी भाषी जनता न भी चाहे तो भी इस सुखद स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता. तो जनाब, पहले मैं देहरादून की चर्चा करूंगा और बाद में कुछ ध्यान उन बुलबुलों पर भी देने की कोशिश करूंगा जिनका जिक्र इकबाल ने किया. ऐसा करने से बुलबुलें भी बुरा नहीं मानेंगी और वह अंतर भी कम हो जायेगा जो इकबाल और खाकसार में सदा से रहा.

देहरादून भारत के प्राचीनतम नगरों में से एक है. यह नगर इतना प्राचीन है कि हमारी पुरानी से पुरानी पुस्तकों तक में इसकी चर्चा नहीं मिलती. भगवान राम ने अपने वनवास के कुछ वर्ष यहीं व्यतीत किये थे. सीता के वियोग में जहां वे रोया करते थे, उस स्थान का नाम अभी तक 'सहस्त्रधारा' चला आ रहा है और यह स्थल अभी तक ऐसी व्याकुल स्थिति में है कि वहां जाकर बिना पत्नी के वियोग के भी अपने-आप ही रोने को तबीयत करती है. रामचंद्रजी के दरबार से सेवानिवृत्त हो जाने पर हनुमानजी ने अपना जीवन यहीं व्यतीत किया था और उनके रहने की वह जगह 'हनुमान चौक' के नाम से अभी तक देहरादून नगर में स्थित है. बजरंगबली के भय से दूकानदार जितने कम दाम पर अपनी चीजें यहां बेचते हैं उतनी कहीं और नहीं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हनुमानजी की देखा-देखी बाकी लोग भी रिटायर होने के बाद यहीं बसने लगे हैं और यह परंपरा आज तक चली आ रही है. महाभारत काल में भी इस स्थान का बड़ा महत्त्व था. कहते हैं कि यदि पांडवों ने कौरवों से मात्र देहरादून ही प्राप्त कर लिया होता तो भी युद्ध जो था, वह रुक जाता. कौरवों ने देहरादून क्या, सुई की नोक के बराबर भी भूमि देने को मना कर दिया. युद्ध हुआ और बाद में पांडव लोग देहरादून के ही मार्ग से स्वर्ग को गये. जो कुत्ता पांडवों के साथ स्वर्ग गया था वह धर्मराज युधिष्ठर ने मसूरी से ही खरीदा था. कालिदास का यक्ष भी कुबेर की आज्ञा से जो छोटा नागपुर तक गया था वह भी देहरादून, हरिद्वार व कनखल होकर ही गया था, जिनमें से कनखल नगर की चर्चा स्वयं कालिदास ने मेघदूत में की. बाकी नगरों की चर्चा इस कारण नहीं की क्योंकि वे वैसे ही काफी विख्यात थे. सूरज को दीपक दिखाना कालिदास को कभी शोभा नहीं देता. कालिदास के यक्ष के बाद भी फाह्यान, ह्वेनसांग और इत्सिंग वगैरा जो यात्री चीन से भारत आये वे देहरादून के ही मार्ग से आये. और तो और, महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन भी जो गये, वह देहरादून और मसूरी के ही मार्ग से गये.

देहरादून का वर्णन जितना सरल है, वहां पहुंचकर गतिशील रहना उतना सरल नहीं है. हरिद्वार में काफी हल्की हो जाने पर भी रेलगाड़ी जो है वह नियमित समय पर कभी देहरादून नहीं पहुंचती. अगर आप कभी किसी ऐसी रेल में बैठे हों जो बार-बार अपने इंजिन की दिशा बदल रही हो या बिन बात ही काफी लेट चल रही हो तो आप समझ लीजिए वह गाड़ी जरूर देहरादून जाती रही है. शरीफ से शरीफ रेलगाड़ी भी देहरादून लगभग तीन घंटे लेट पहुंचती है. जितनी देर में आप रेल से देहरादून से दिल्ली तक की यात्रा करते हैं, उतने समय में आप दिल्ली से रेल पकड़कर कलकत्ता पहुंच सकते हैं. और रेलवे विभाग की कायरता देखिए कि वह देहरादून से आगे कभी पटरी नहीं बिछा पाया हालांकि मैदान कोई चालीस मील तक चलता है. और वहां खत्म होता है जहां कि कालसी नामक स्थान पर अशोक का एक शिलालेख गोबर, कीचड़ और पूरे कचरे के बीच शान से खड़ा है. बहरहाल, रेल जो वह हिम्मत करके देहरादून तक ही चलती है. देहरादून उतर कर आपको पैदल चलना पड़ता है क्योंकि सवारी के लिए वहां सिर्फ ऐसी गाड़ियां प्राप्य होती हैं जिनका भाड़ा आपको गाड़ीवाले की मर्जी के मुताबिक ही देना होता है.

शहर के भीतर आप सड़कें देखते हैं. मेरी वाणी याद करते हैं कि यह नगर सचमुच प्राचीन है. सारी सड़कें ऐसी हैं जैसी कि अभी अभी किसी खुदाई में से निकली हों. यहां के नागरिक प्रशासन का हमेशा यह ध्येय रहा है कि आदमी को पतन की ओर जाने से रोके और इसी कारण उसने इस दिशा में अभ्यास देने के लिए सड़कों को ऐसा बनाया है या उन्हें ऐसी हालत में रखा है कि प्रत्येक गज पर दो फीट गहरे कम से कम तीन गड्ढे जरूर हों. मसूरी जाने वाली धूप का चश्मा लगाए नाना प्रकार की अधनंगी सवारियां यहां उतरती हैं. और इन गड्ढों से फायदा उठाकर अपना चरित्र ऊंचा उठाती हैं. वैसे भी स्थिति यह है कि धार्मिक व पुण्य किस्म की जितनी सवारियां होती हैं वे तो हरिद्वार ही उतर जाती हैं, देहरादून जो सवारी आती हैं वे प्रायः ऐसी होती हैं जिन्हें चरित्र को ऊंचा उठाने की वैसे भी काफी जरूरत रहती है. संतोष का विषय है कि ऐसी देशी या विदेशी सवारियां यहां यत्नपूर्वक बनाये गए नाना प्रकार के गड्ढों में नाना प्रकार से गिरती हैं और अपना चरित्र ऊंचा करती हैं. और हां, चरित्र के ऊंचा करने की इस प्रक्रिया में शरीर को कोई क्षति पहुंच जाये तो वह प्राकृतिक चिकित्सा से ही ठीक की जाती है क्योंकि काम का कोई अस्पताल या डाक्टर इस क्षेत्र में कभी नहीं पाया गया.

क्योंकि सरकारी क्षेत्र के गड्ढे में गिरने और चरित्र ऊंचा करने की विशेष आवश्यकता होती है, यह स्वाभाविक ही था कि देहरादून में सरकारी संस्थान काफी मात्रा में हों. यहां फारेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट है, सेना के लिए साज और सामान बनाने की विशाल निर्माणी यानी फैक्ट्री है. सर्वेअर जनरल और नैवल हाइड्रोग्राफर के कार्यालय हैं, तेल व स्वाभाविक गैस का कमीशन है और वायु सेना के रक्षा लेखा नियंत्रक का दफ्तर है. भारतीय सेना की शानदार अकादमी यहीं स्थित है और यह है कि यहां कैडेट जन्म लेता है जो जनरल होकर यहां कोठी बनाता है और दफनाया जाता है. सरकारी दफ्तरों के अलावा यहां साहित्यिक संस्थाएं हैं, पिकनिक जाने को मसूरी है.

ऐसे-ऐसे कालेज हैं जो बिना प्रिंसीपल और किसी स्थिति में बिना छात्रों के ही चलते हैं, रोटरी क्लब व लायंस क्लब के शेर और शेरनियां हैं और देखने के लिए वे बुलबुलें हैं जिनका जिक्र महाकवि इकबाल ने किया था. जो ज्यादा मिलनसार किस्म की बुलबुलें हैं, वे मसूरी चली जाती हैं क्योंकि देहरादून में उनका दिल नहीं लगता. ऐसी बुलबुलों का दिल लगाने के लिए नवयुवकों और कुत्तों की जरूरत होती है और ये चीजें दुर्भाग्यवश देहरादून में उतनी इफरात से प्राप्त नहीं होतीं.

देहरादून में सब कुछ है पर गरीब आदमी नहीं है. चीजों की कीमतें दुगुनी हैं पर उससे कोई परेशान नहीं होता. सब लोग सूट पहनते हैं और मोटरों में बैठते हैं. शानदार होटलों में भीड़ रहती है और शराबबंदी होने पर भी मधुशाला तो मधुशाला, मधुबाला तक मिल जाती है. शर्त बस इतनी है आपके पास रुपए हों. और रुपए जो हैं वे देहरादून में हर एक के पास



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाये जाते हैं. परिणाम यह है कि यहां लोग सुखी हैं, सौ साल तक जीते हैं और अपराधों की संख्या अपेक्षाकृत कम है. अपराध तो गरीब आदमी ही करता है और वह यहां पाया नहीं जाता. अमीर लोग कभी कोई अपराध नहीं करते. वे शराब पीते हैं, सूट पहनते हैं और धूप का चश्मा लगाकर मोटर से मसूरी घूमने जाते हैं. मसूरी एक ऊंची जगह है और वहां जाकर मैदान का आदमी और भी छोटा नजर आता है. साहब लोग इस स्थिति का जायजा लेते हैं और सिगार सुलगाते हैं. बाकी पब्लिक को इसी तरह देखने की आदत डालने के लिए भारतीय प्रशासनिक सेवाओं की अकादमी को मसूरी में ही स्थापित किया गया. मैं खुद इन्हीं सेवाओं में से एक का अधिकारी हूं. मगर मेरे साथ इल्लत है कि मैं अफसर होने के साथ पब्लिक भी हूं जिसे कि नीची निगाह से देखा जाता है.

देहरादून का प्रशासकीय प्रबंध काफी अच्छा है. भारत में शायद यह अकेला शहर है जहां भवन-कर के साथ-साथ जल-कर भी वसूल किया जाता है. बिजली और पानी हैं जो अक्सर एक-दूसरे के साथ भागते रहते हैं. पत्नियां यहां काफी कम मात्रा में भागती हैं मगर पति लोग जो हैं वे अलबत्ता जरूर भागते रहते हैं. पुलिस काफी सतर्क है और पूरे चौराहे का पुलिसमैन हमेशा आपकी मोटर निकल जाने के बाद हाथ देता है. सुनते हैं कि यहां की जिला जेल काफी छोटी मगर काफी खूबसूरत है. पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी अपने यौवन का कुछ भाग इसी जेल में काटा था. भगवान ने चाहा तो कभी मुझे भी इस जेल को भीतर से यथाविधि देखने का शुभ अवसर मिलेगा. अदालतें काफी पुरानी इमारत में हैं और कुछ में तो मुकद्दमे भी इतने पुराने पड़े हैं कि मुकद्दमा दर्ज करानेवाले पता नहीं कब के मरहूम हो गये. सांप्रदायिक दंगों के संदर्भ में यह नगर काफी पिछड़ा है और इन दिनों जब कि लगभग सारे देश में कुछ न कुछ रचनात्मक काम किया जा रहा है तब इस शहर का इतना शांत और शालीन रहना काफी खलता है. आइए, हम सब लोग मिलकर चौराहे पर हाथापाई करें. दंगा शुरू करने के लिए इतना काफी है. बाकी काम जो है वह शहर के गुंडे और पुलिस वाले संभाल लेंगे. राज्य की पुलिस इन दिनों काफी व्यस्त है और इसी कारण बलात्कार वगैरा उतने नहीं किये जा रहे हैं जितने कि किये जाने चाहिए थे.

देहरादून एक घाटी में बसा है, जिसके तीन ओर हिमालय पर्वत खड़ा है. ठीक वही हिमालय जिसकी चर्चा कालिदास ने कभी अपने काव्यग्रंथ 'कुमार संभव' में की थी. इस घाटी का नाम है 'दून घाटी.' हावड़ा और अमृतसर को जो रेलें अपने निश्चित समय से एक घंटा बाद चलती हैं उन्हें दून एक्सप्रेस ही कहा जाता है. दून का अर्थ है 'द्रोण' जो कि सरकंडे की भांति होता है. जब आर्यों ने यहां अपना डेरा डाला तो यह स्थान 'डेरा द्रोण' कहलाया जो कालांतर में देहरादून हो गया. हमारे आर्य पूर्वज कितने विशाल हृदय थे कि उन्होंने इस स्थान का नामकरण करने में डेरा शब्द का प्रयोग किया जो कि वैसे शायद फारसी का शब्द है. पर्वतों की घाटी में बसा यह नगर प्राकृतिक सुषमा से पूरी तरह ढका है. सब तरफ नीले-नीले पहाड़ और बीच में धानों से हरी-भरी दून घाटी. देहरादून के एक ओर यमुना बहती है तो दूसरी ओर गंगा. वही पंत-जी वाली बात—दो बांहों से दूरस्थ तीर, आलिंगन करने को अधीर. वैसे कितना अच्छा रहा कि इन नदियों ने यहां एक-दूसरे का आलिंगन नहीं किया क्योंकि यदि वैसा किया जाता तो इस शहर का नाम 'देहरादून' न होकर 'प्रयाग' होता. जाड़ों में यहां कड़ाके की सर्दी पड़ती है. गर्मियां जो होती हैं वे प्रायः हल्की होती हैं और इसी कारण यहां गधे जो हैं वे कम पाये जाते हैं. जब से मैं यहां आया हूं, तब से गधों की संख्या अलबत्ता जरूर कुछ बढ़ी है. बसंत आता है तो पेड़ फूलों से चटख जाते हैं. और दिशाएं लाल हो जाती हैं. वर्षा की ऋतु में यहां सिर्फ वर्षा होती है, लड़कियां धान रोपती हैं और पहाड़ी लोग खपरैल के नीचे बैठकर लोकगीत गाते हैं. यदि वर्षा न हो तो देहरादून एक दयनीय स्थान हो जाता है जिसे देखकर कवि रहीम ने कहा था—

**रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून,**
**बिन पानी जियरा फटे, देखि देहरादून.** □

---

लघुकथा

## जीवन साथी

□ कृष्णा बाछल

"क्यों रे साधू, अब जनान्नी का क्या हाल है?" कमाने के लिए आये हुए जमादार से सेठानी ने पूछा.

हमदर्दी पाकर साधू निढाल होकर वहीं बैठ गया. बोला, "हाल कुछ नी बीब्बी जी. एक तो सारा-सारा दिन लैन में लगके बी नंबर नी आता. अर. . . .डागडर दवाई तो कबी देतेई नी. पर्ची पकड़ा देवें हैं. कहने कूं सरकारी दवाखाना हैगा."

"फिर?"

"फेर क्या जी. मैं तो न्यू कहूं हूं कि भगवान उसे बुलाई ले!" कहते-कहते साधू का गला भर्रा गया.

"अरे नामुराद! बुढ़ापे में ही तो जीवन साथी की जरूरत होती है."

"इब अपने बुढ़ापे को देखूं या बिटिया को देखूं बीब्बीजी. वा बिना ब्याहे ही बुढ़ाई आ रई हैगी. बड़ी मुसकिल ते पांच सौ जोड़े हैंगे. इस पर खर्च हो गये तो. . ."

वह चुप होकर कुर्ते के पल्ले से आंखें पोंछने लगा. □

● केंद्रीय विद्यालय, न.-1, पटेल पार्क, अंबाला कैंट.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## तस्वीर बोलती है

इस चित्र का कोई मनपसंद शीर्षक, सिर्फ पोस्टकार्ड पर अपने नाम, पते सहित, 30 नवंबर, 1984 तक, इस पते पर भेज दें : **संपादक : सारिका (तस्वीर बोलती है : 367) 10, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002.** चुने गये तीन शीर्षकों पर क्रमशः 50, 30 और 20 रुपये के नकद पुरस्कार दिये जायेंगे. आप कितने भी शीर्षक भेज सकते हैं, लेकिन हर पोस्टकार्ड पर ऊपर प्रकाशित **'तस्वीर बोलती है'**, बतौर कूपन चिपकाना आवश्यक है. एक कार्ड पर केवल एक ही शीर्षक भेजें.

**▣ छाया : राजकिशन नैण. ग्राम-पोस्ट : अजायब-124111, जिला : रोहतक (हरियाणा)**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

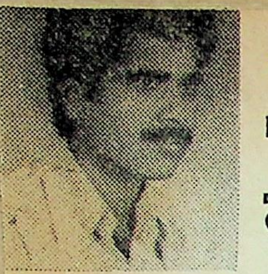

## चोरी की लत

▣ आलोक कुमार

बात उन दिनों की है जब मैं नौ-दस साल का था. उन दिनों हम सारे साथियों को पैसा जमा करने की धुन सवार थी. अधिक जमा करने की धुन में धीरे-धीरे मेरी आदत चोरी की ओर बढ़ने लगी. घर, यहां तक कि अगल-बगल-वालों के घर से पैसा चुरा लेता था. बराबर की सफलता ने इस आदत को थोड़ा तेज ही कर दिया.

एक दिन शाम में हम सारे बच्चे दरवाजे पर खेल रहे थे कि एक लड़के की जेब में रखी एक अठन्नी और एक चवन्नी पर मेरी नजर पड़ी. मौका देखकर मैंने उसकी जेब से पैसे निकाल लिये.

खेल की समाप्ति पर पैसों की खोज आरंभ हुई. लेकिन, न मिलने के कारण शोरगुल बढ़ गया. फलतः मां सहित अगल-बगल के लोग भी इस घटना को जान गये. घर आकर मैंने चुपचाप बिछावन तले सावधानी पूर्वक पैसे छिपा दिये.

संयोगवश, अगले दिन मां बिछावन को धूप दिखाने को उठाने लगीं तो पैसे फर्श पर गिर पड़े.

मां ने बगैर किसी को बताये मुझे बुलाया और पैसे लौटाने भेजा. किसी बहाने से मैं पैसे लौटा तो आया मगर उस रोज जो ग्लानि मन में अपने प्रति उठी उसने चोरी की आदत छुड़ा दी. ☐

## और मैंने आमुख लिख लिया

▣ करुणानिधान

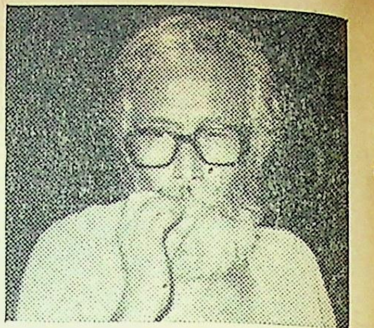

1972. उन दिनों जोर-शोर से भगत सिंह के दस्तावेजों की आरकाइबों में छान-बीन, चंडीगढ़, जालंधर, अमृतसर, अनुबाद, खबरों के आने-जाने में जबरदस्त व्यस्त था. पत्नी, बच्चों को बनारस भेज दिया था. 'मुक्ति' का दस्तावेज अंक का पहला फर्मा प्रेस में चला गया था. रात के बारह बज जाते थे घर लौटने में.

एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी सौंपी गयी थी मुझ पर. 'मुक्ति'-1 का आमुख लिखना था. दिमाग में आंदोलनों की तमाम बातें, सरकारी पक्ष, विपक्ष, संदेह, डर सभी कुछ मंडरा रहे थे. कैसे लिखूं, क्या लिखूं? निरपेक्ष रहूं? नहीं, नहीं, निरपेक्ष कुछ भी नहीं होता. निरपेक्षता का मतलब है यथास्थिति को बनाये रखना. क्या मैं ऐसा चाहता हूं? अपने साथ जुड़े उन तमाम प्रश्नों से उलझता, मनन करता हुआ मैं मोहन सिंह पैलेस से माल रोड की ओर चल पड़ा. रात के ग्यारह बजे.

घर पहुंचते ही फर्श पर पड़ी चिट्ठी को उठा लिया. बिना कपड़े उतारे ही पत्र को पढ़ डाला था. पत्र मेरी पत्नी प्रभा का बनारस से आया था. उसमें लिखा था—हमारा सबसे छोटा लड़का मुक्ति चार दिन हुए मर गया. पत्र दो भागों में बंटा था. पहले उसने लिखा था—डॉक्टर के यहां से अब दवा नहीं ला सकती. काफी उधार हो गया है. वह तकादा कर रहा है. इधर मुक्ति को रोज 102/103 बुखार आ रहा है. क्या करूं? तुम्हें कैसे लिखूं? तुम तो भगत सिंह के 'बम का फलसफा' की छान-बीन करने में लगे हो लेकिन हमारा फलसफा क्या होगा?

इसके बाद उसने एक मोटी लकीर खींचकर लिखा था.

आज मुक्ति मर गया. कल सारी रात उसे लेकर गोद में ही काट दी थी. आज वह नहीं है. क्या तुम ठीक इसी वक्त, अभी मेरे कमरे में दाखिल हो सकते हो? इसके अलावा इस समय और कुछ सोच नहीं पा रही हूं.

मेरा कमरा रोज की तरह उस दिन भी अकेला और सुनसान था. पर उस दिन के अकेलेपन और सांय-सांय की आवाज से मैं बार-बार चौंकने लगा था. उसी रात मंगलेश डबराल और त्रिनेत्र जोशी ने कहा था, "हम भी तेरे यहां चलें?" मैंने मना कर दिया था. यह कुछ अच्छा ही हुआ था वरना सांत्वना और खोखलेपन से मुझे बहुत देर तक जूझना पड़ता. . .और मैंने आमुख लिख लिया था! ☐

# ...और भुलाये न बनें

अविस्मरणीय सपने, घटनाएं और संस्मरण प्रस्तुत करता पाठकों का अपना स्तंभ

## वरदान

▣ शैलेंद्रनाथ भटनागर

मेरी बड़ी बहन की शादी थी. घर के आंगन में दोनों पक्षों के लोग विराजमान थे. वर को तीन अवसर दिये जाते हैं कि सास-ससुर से वह अपनी इच्छानुसार कुछ मांग ले!

जब पहला अवसर आया तो सभी उत्सुक थे. जीजाजी के भाई-बहिन उन्हें एक से बढ़कर एक चीजों के नाम सुझा रहे थे. हम लोग भी डर रहे थे कि न जाने क्या मांग लें और पिताजी वह चीज दे भी पायें या नहीं! तभी जीजाजी ने एक गिलास ठंडा पानी मांगकर पूजा कार्य को आगे बढ़वा दिया. दूसरे अवसर पर दो पान मांगे. इससे उनके भाई-बहिन कुछ रुष्ट हो गये.

तीसरी बार भाई-बहिनों के सुझाव पर जीजाजी ने भी पिछले दो अवसरों की कसर निकालने का आश्वासन देते हुए लंबी-चौड़ी भूमिका बांधी तो हम सब चिंतित हो उठे. पर क्षण-भर में ही पिताजी से जीवन भर सुखी रहने का आशीर्वाद मांगकर जीजाजी ने हमारी चिंता दूर कर दी. ☐



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनीषा धीमे-धीमे मंजू का सिर थपथपाती बोलती रही, 'मैं जिंदगी से कुछ भी गंदे पात्र में नहीं ले सकती, इसे मेरा अभिमान कह लो, जैसा सब ने कहा या मेरा सौंदर्य-धर्म कह लो, जैसा मैं समझती हूं. अगर जीवन के सुख भीख हैं तो वह भीख भी मैं साफ भिक्षापात्र में ही ले सकती हूं, गंदे में नहीं, लेकिन मुश्किल तो यह है मंजू, जो प्यार देते हैं, उनसे जिंदगी की उज्ज्वलता बर्दाश्त नहीं होती. तन का सतीत्व उन्हें आकर्षित करता जरूर है, मगर प्यार के बदले में वे इस सतीत्व को मिटा देना चाहते हैं. प्यार में दो कदम चलने के बाद ही उन्हें तन-मन की सच्चाई अखरने लगती है, अभिमान लगने लगती है." मंजू उसे ऐसे देख रही थी जैसे पूरी बात उसकी समझ में नहीं आ रही हो.

"यह मत समझना कि मुझे शरीर के प्रेम से नफरत है. ऐसा नहीं है पगली. मैंने तो अपनी आत्मा को त्वचा का रोम-रोम बनते-बनते महसूस किया है. पल में सत्य आत्मा बन जाता है और पल में शरीर. आत्मा का प्रेम शरीर के प्रेम से भिन्न नहीं होता, मगर प्रेम आत्मा और शरीर दोनों

**एक होनी थी, जो हो गयी थी, एक ऐसी होनी, जिसके होने के बाद होने को कुछ रह नहीं गया था! एक प्रौढ़ युवती के तपस्वी कौमार्य का हृदय विदारक अंत. मानव मन की गहरी पर्तों को उकेरती मार्मिक कथा—**

की जिदों को पूरा करता है, दोनों में से किसी को नहीं कुचलता. शरीर और आत्मा में जब-जब ऐसा समन्वय हुआ, मैंने प्रेम महसूस किया.

"किंतु दुख यह रहा कि किसी ने मेरा साथ नहीं दिया. वे शरीफ लड़के भी जो मेरे जीवन में आये, आत्मा और शरीर के इस संगम का इंतजार न कर सके. कुछ दूर तक वे आये तो आध्यात्मिक प्रेम की वह सफेद गंगा लुप्त हो गयी और अचानक जमना का काला जल आ गया. उनकी वासना और प्रेम समन्वित नहीं थे या तो वे कोरा, आध्यात्मिक प्रेम कर सकते थे या फिर शारीरिक प्रेम. मैं दोनों एक साथ चाहती थी." कनफेशन करते हुए लज्जा की एक लाली उसके मुंह पर आयी, "मैं चाहती थी मंजू, कि किसी पुरुष से मुझे वह आलिंगन मिले, जो मेरी आत्मा और शरीर को एक रहने दे, किंतु उनके आलिंगन मेरे शरीर को अलग नियंत्रण देते थे और मेरी आत्मा से डरते थे. मैं अपनी आत्मा भी उनके प्रेम में डुबाने लगी थी, मगर." उसकी आंखें भर आयीं, "और इसी तरह इतनी उम्र कट गयी. मुझे वह प्यार नहीं मिला और जो प्यार मुझे मिला, वह मैं ले न सकी. उसे लेने में मुझे हर घड़ी अपनी आत्मा की हत्या करनी पड़ती.

"धीरे-धीरे सब मुझसे दूर हो गये. मुझे घमंडी, स्टचू न जाने क्या-क्या नाम दिये गये. और मेरा दोष सिर्फ इतना था मंजू," वह आवेश में आ गयी, "कि मैं अपने दुखों को झूठे प्रेम में बदसूरत नहीं बनाना चाहती थी. हर अच्छे इंसान

# मौत एक लहर की

• निर्मल कुमार

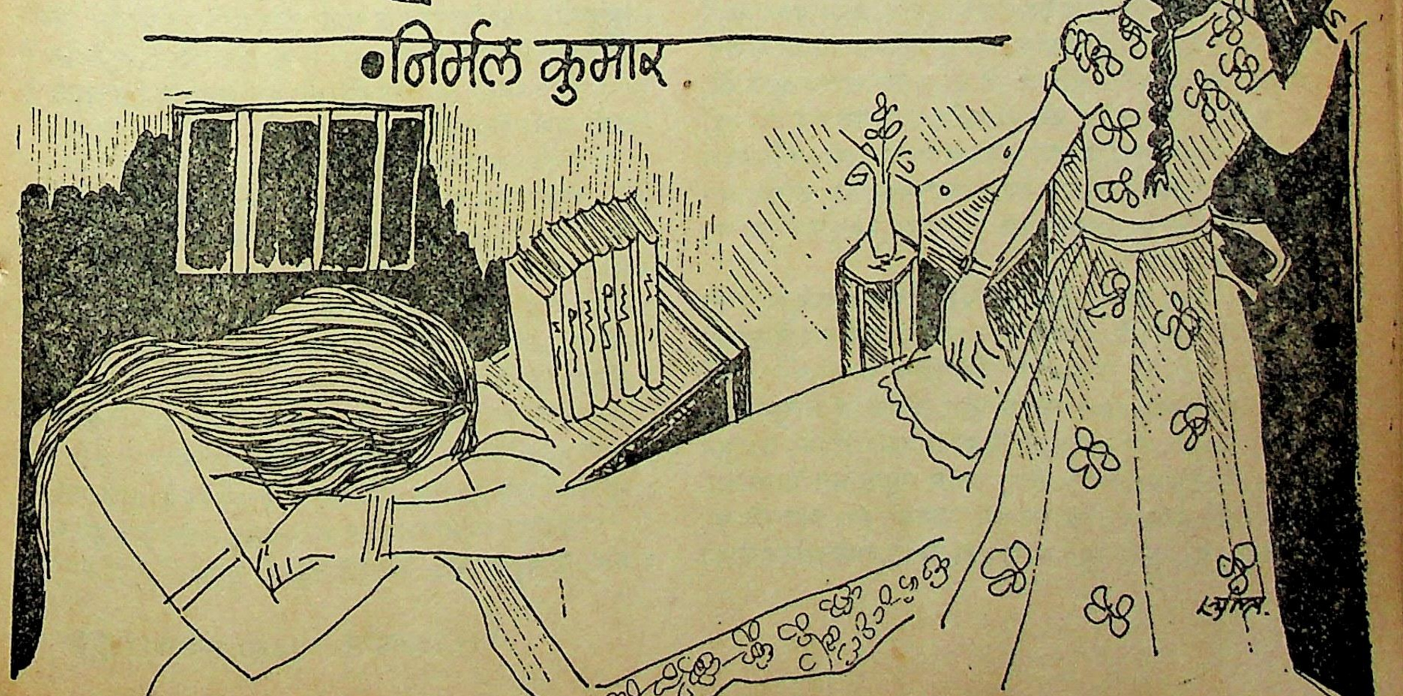



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को दुखों से भरा पाया मैंने और मुझे लगने लगा था कि कलियुग में दुख ही ईश्वर है. जब दुख अकारण अच्छे हृदयों में सर्वव्यापी है तो दुख ईश्वर नहीं तो और क्या है, मैंने इसलिए दुखों की पूजा को ही ईश्वर पूजा समझा. मैंने उत्तर में यही चाहा कि लोग भी मेरे दुखों का आदर करें, उन्हें दूर करने की कोशिश न करें. ऐसा करने से दुख बदसूरत नहीं बनते." उसे लगा, मंजू इस दार्शनिक वार्त्तालाप से कहीं ऊब न जाये. बात छोटी करते हुए वह बोली, "यह मैं इसलिए कह रही हूं मंजू कि मनुष्य का चरित्र उसके दुखों से जन्म लेता है. अगर दुख कुरूप हो गये तो मनुष्य दुश्चरित्र हो जाता है. अगर दुखों की पूजा करो तो वे डिस्टर्ब नहीं होते और तब उनसे सुंदरता उपजती है. इस सुंदरता का ही एक नाम सच्चरित्रता है.

"किंतु प्रेम करने वाले इन दुखों को मिटा देना चाहते थे. मिटा कोई नहीं पाता. बस, मिटाने की कोशिश में बदसूरत जरूर कर देता है. मैंने ऐसा नहीं होने दिया तो मुझे सबने आइसोलेट कर दिया. एक सुंदर जीवन जीने की सजा जानती हो मुझे क्या मिली? मैं एक वीरान टापू बन गयी, जिससे सब डरकर दूर हो गये. यह कलियुग है ना. यह अभिशप्त युग है. यहां सुंदर जीवन को अकेला करके तरसा दिया जाता है. सुंदर जीवन के साथ लोग नहीं होते. बदसूरत जीवन के साथ जिंदगी के मेले लग जाते हैं.

"मैं इतनी अकेली हूं मंजू, इतनी अकेली, इतनी अकेली. . ." यह कहते-कहते मनीषा ने मुंह दोनों हाथों से छिपा लिया और अपनी गोद में रखकर रोने लगी. उसका रोना कोई ऐसा रोना नहीं था. वह फूट-फूटकर रो रही थी और उसके कंधे बुरी तरह सिहर रहे थे.

बाहर बादल गरज रहे थे और अब खिड़की से बौछारें आ रही थीं. मंजूश्री उसके रोने को अनदेखा कर उठी और पर्दा खींच दिया और फिर वहीं आकर बैठ गयी. दो वर्षों से वे होस्टल के उसी एक कमरे में रह रही थीं, मगर कभी भी मनीषा को, रोना तो दूर, भावुक होते हुए भी मंजूश्री ने नहीं देखा था. कोई दुख था उसके दिल में, बहुत गहरा कोई दुख, जिसे वह किसी के साथ बांटना नहीं चाहती थी शायद. मंजूश्री ने कई बार कोशिश की थी उसके करीब आने की, मगर जैसे एक कमरे में बंद थी मनीषा, जिसके दरवाजे नहीं थे. मंजूश्री ने सोचा, अच्छा है, रो ले मनीषा, रोकर दिल का गुबार कुछ तो कम होगा. वह असह्य भार जो उसके साथ रहते हुए हरदम उसको दिल पर रखा महसूस होता था, कुछ तो हल्का होगा.

मंजूश्री की आयु तेईस वर्ष थी और दो वर्ष पहले ही इस कान्वेंट स्कूल में अंग्रेजी की अध्यापिका के रूप में उसकी नियुक्ति हुई थी. बड़ी-बड़ी निमंत्रित करती-सी आंखें, हंसाता गोरा मुखमंडल, स्वस्थ किंतु क्षीणकटि से सुशोभित शरीर. मनीषा को वह बहुत प्रिय थी. छुट्टियों में वह जब घर जाती तो मनीषा के लिए समय पहाड़ बन जाता था. मनीषा की आयु पैंतीस वर्ष थी. उसका रंग बादामी था, जो लगता था, कभी बहुत गोरा रहा होगा. दुखों और एकाकी जिंदगी ने उसे ऐसे बदल दिया था जैसे गुलदस्ते में रखे सफेद गुलाब बासी हो जाने पर कुछ पीले हो जाते हैं. उसकी आंखों के नीचे सोच की रेखाएं थीं. उसके होंठ सूखे थे, किंतु सब मिलाकर उसकी आकृति में एक तीव्र कशिश थी. किसी की ओर देखती न थी, किंतु जब भी उसकी आंखें किसी की आंखों से मिलतीं, ऐसा लगता जैसे बिजली के तार छू गये हों. एक भूख थी उसकी आंखों में, जो दिल उलट देने की, उसके लिए कुछ भी कर देने की प्रेरणा देती थी. मनीषा इस कान्वेंट स्कूल में पिछले तेरह वर्षों से विज्ञान पढ़ा रही थी. इस बीच एक के बाद एक अनेक अध्यापिकाएं उसके साथ इस कमरे में रही थीं, किंतु किसी से भी उसे इतना लगाव नहीं हुआ था, जितना मंजूश्री से. इतनी लंबी सर्विस और कठोर परिश्रम और कर्त्तव्य भावना से किये अध्यापन के बावजूद मनीषा की तरक्की नहीं हुई थी. उसके जूनियर को प्रिंसिपल बना दिया गया था, क्योंकि मनीषा ईसाई नहीं, हिंदू थी.

ये बातें मनीषा के लिए मायने खो चुकी थीं, क्योंकि उमंगों, आकांक्षाओं और अरमानों ने वर्षों से उसके दिल में उठना बंद कर दियाथा.

"हां, मैं बनी तो हूं, इन बादलों से."

मंजूश्री बादलों को देखने लगी. एक सफेद बादल पर हल्की-सी लाली आ गयी थी. हां दीदी, जैसे इस बादल के गाल लाल हो गये हैं. ऐसे ही जब तुम लजाती हो तो खूब प्यारी-प्यारी लाल सेब-सी हो जाती हो."

"अच्छा तो मैं शर्माती भी हूं." मनीषा ने बनावटी गंभीरता के साथ कहा और फिर हंसने लगी, "तू बातें बहुत बनाने लगी."

"नहीं, सच दीदी."

शायद मौसम की ही कोई छुअन होगी, जो दोनों के अंगों को लग गयी हो, दोनों हाथों में हाथ डाले बच्चियों की तरह होस्टल में घुसीं, "मेरे शरमाने के दिन रह गये हैं क्या पगली."

मनीषा का चेहरा सूख गया. कुछ सोचकर बोली, "फर्क-फर्क के लोग हैं दुनिया में. कुछ को खुशी झूठे प्रेम में मिल जाती है और किसी को प्रेम जब तप बन जाता है, तभी खुशी मिलती है."

"तो बना लो न तप."

"यह तप एक के किये से नहीं होता. यह भी कोई मोक्ष के लिए तप है, जो अकेले कर लिया जाये. यह वह व्रत है, जिसे दोनों को साथ-साथ रखना पड़ता है. एक ने व्रत तोड़ दिया तो दोनों का टूट जाता है. तभी तो कहते हैं—प्रीत न करियो कोय". कहती हुई मनीषा पलटी और हंसते हुए मंजूश्री से लिपट गयी.

"दीदी, तुम्हें प्यार करना ही होगा," मंजू बच्चों की तरह मचलती हुई बोली, "मेरी अच्छी दीदी, मेरे लिए." और उसने अपनी पतली सुंदर अंगुलियां उसकी ठुड्डी के नीचे रख दीं.

मनीषा का मुख लजा गया. अपना मुंह छुड़ाते हुए आंखें बंद कर वह बोली, "कर तो रही हूं तुमसे."



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## आलोचकों से शिकायत

▣ मैक्सिम गोर्की

हमारे आलोचकों की शिकायत है कि हमारा साहित्य इस युग के 'वीर-पुरुषों' (हीरो) को संपूर्ण और सजीव प्राणी के रूप में चित्रित नहीं करता, बल्कि उन्हें कठोर और भावहीन प्राणी के रूप में प्रस्तुत करता है. कुछ आलोचक तो यहां तक बढ़कर दावा करने लगते हैं कि 'यथार्थवाद' इस हीरो का वैविध्यपूर्ण और कलात्मक चित्रण करने में सर्वथा असमर्थ है. आलोचक का काम ही ऐसा है कि वह उसे एक सीमा तक अनास्थावादी बना देता है. वह हमेशा त्रुटियों और खामियों की तलाश में रहता है और अक्सर अपनी अनास्था को पादरी की मात्र बौद्धिक स्तर की कट्टरता जैसी चीज के पीछे छिपाये रखता है. पाइक मछली और उल्लू में पाये जाने वाले गुणों के इस विचित्र और अस्वाभाविक संयोग ने साहित्य में काफी उत्पात मचाया है, लेकिन नये लेखकों के लिए यह शायद ही उपकारी सिद्ध हो. इसके अलावा लेखकों के प्रति अपने व्यवहार में आलोचक अक्सर ऐसा स्वर अपनाते हैं, जिससे उनके 'बड़प्पन' का प्रदर्शन हो सके. यह बिल्कुल अनावश्यक है और तरुण लेखकों के लिए तो अत्यंत अपमानजनक है. इससे मेरे मन में एक प्रश्न उठता है कि हमारे आलोचक 'मालिकों की नैतिकता' से मुक्त हैं भी या नहीं और क्या वे अपनी प्रतिभा और क्षमताओं के बारे में बहुत अतिरंजित ढंग से नहीं सोचते? □

"मुझे नहीं दीदी, किसी और को, किसी मर्द को" कह, कर खुद मंजू लजा गयी.

पता नहीं, प्यार को लोग क्या समझते थे. कालेज के गेट पर, गलियों में खड़े लड़के जिस तरह प्यार प्रदर्शित करते थे, उससे मनीषा को कभी भी विजय की अनुभूति नहीं हुई. लड़के उसे 'किलर' कहते थे, दो अर्थों में—एक तो 'कातिल' और दूसरे 'किलर' नाम की लड़की, जिसके रूप से वे उसकी तुलना करते थे. अपनी समझ से वे उसकी तारीफ करते थे, क्योंकि उस सुंदरी ने विश्व के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों और राष्ट्रपतियों को मोहित कर लिया था, किंतु इस उपमा से उसके तन बदन में आग लग जाती थी. और जब एक दिन उससे बर्दाश्त न हुआ तो उसने एक लड़के को, जिसने कालेज गेट से घुसते हुए उसे धीरे से 'किलर' कह दिया था, पलट कर दो चांटें रसीद कर दिये थे. चांटे मारकर बहुत उत्तेजित हो गयी थी और खुद भी रोने लगी थी.

उसका एक अटूट विश्वास था, जिसे लोग समझते जरूर थे, मगर जिसमें कोई उसके साथ नहीं था. उसका अटूट विश्वास था कि नैतिक प्रेरणा के बिना शरीर की धरती पर प्यार के फूल नहीं खिलते. जो खिलता है, उसे वे चाहे प्यार कह लें, मगर ऐसा कहकर अपनी कमजोरी को वे खूबसूरत नाम देना चाहते हैं.

और फिर उसके जीवन में आये थे रमेश, नीरज और नागेश. ये जीवन में आये थे या यों कहना अधिक उपयुक्त होगा कि जिंदगी के शो-केस में वह एक सजी गुड़िया बनी खड़ी थी. और ये तीनों शरीफ लड़के बाहर से उसे देख उसकी बनावट और उसकी ड्रेस की तारीफ करते गुजर गये थे. इन्हें भी पता नहीं चल पाया था कि यह एक सुंदर गुड़िया नहीं, एक जीती-जागती लड़की है, जिसका दिल उस सौंदर्य से बहुत अधिक सुंदर है, जो उसके चेहरे पर और जिस्म पर बिखरा हुआ है.

उसे एक ऐसे साथी की तलाश थी, जो उसके दुखों की इज्जत करता. उसके दिल में स्वतः ही यह विश्वास उठ गया था, जिसके आगे वह विवश थी कि हर इंसान का जिस्म जन्म-जन्म के दुखों पर खिल आया एक फूल है. अगर कोई उस फूल को लेना चाहे तो उसे वो दुख भी लेने होंगे. उसने कब चाहा था कि कोई उसकी आत्मा में बसे दुखों का साथ दें? वह तो सिर्फ ऐसा साथी चाहती थी, जो उसके दुखों को छेड़े. उन्हें उसका अस्तित्व समझ, उसकी आत्मा समझ उनका सम्मान करे. उस हंसी से जो लड़के हंसते थे, उसके दुख डर जाते थे. वह प्यार, जो वे लाये थे, उसके दुखों को मिटा देने को बेताब था, मगर मिटाये से दुख मिटते हैं क्या? मिटाने की कोशिश उन्हें बदसूरत कर देती है. उस बदसूरती से दुश्चरित्रता पैदा होती है. फिर पतन की सीढ़ियां आप मिल जाती हैं.

"सच, दीदी." मंजू ने खुशी के मारे फिर उसे अपने सीने में भींच लिया, "ओह मैं कितनी खुश हूं."

"दीदी, ओह दीदी." मंजू ने उसके गले में कसकर बांहें डाल दीं, जोर से उसका आलिंगन किया और फिर हंसी, "दीदी, तुम प्यार क्यों नहीं कर लेतीं?".

मनीषा अचानक गंभीर हो गयी. उसका चेहरा पीला पड़ गया, जैसे वह कोई अशुभ बात कहने जा रही हो. तभी खुले विशाल पंजे की शक्ल का एक बादल तेजी से गुजर गया, "मैं प्यार करने लगी हूं." एक खोयी-सी बहुत धीमी आवाज में मनीषा बोली.

मंजू ने अपना सिर मनीषा के कंधे पर टिका दिया था और वह मध्य सुरों पर एक प्यार का गीत गा रही थी. उसकी दर्दभरी आवाज मानो एक छुरी बन चांदनी को छीलने लगी और चांदनी के साथ मनीषा के दिल की परतें भी छिलने लगीं.

बहुत भावुक हो गयी मनीषा. उसके दोनों कंधे पकड़ उसकी आंखों में देखती हुई वह बोली, "देख मंजू, दोस्ती कभी मत तोड़ना. मैं सारी जिंदगी अकेली रही हूं. मेरे तार किसी से नहीं मिले, सिर्फ तेरे से मिले हैं. जब तेरी शादी हो जाये तो भी अपने पति से कहकर मेरे पास कुछ दिनों को जरूर आया करना, जैसे लड़कियां मैके जाती हैं. मैं पूरा वर्ष खुशी-खुशी तेरे इंतजार में काट दिया करूंगी. मुझे भी एक बहाना-सा हो जायेगा."



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तभी मंजू ने पूछा, "कौन है वह?"

"वह जो हमारी स्कूल बस का ड्राइवर है."

"क्या? वह? जोगेंद्र?".

"हां पगली." एक फीकी हंसी मनीषा के मुख पर थी, "और मुझसे अब कौन प्यार करेगा? देखती नहीं मेरी आंखों के नीचे बना झुर्रियों का कलैंडर." अचानक मनीषा की आवाज में जैसे जान आ गयी. वह एक तीव्र उत्साह के साथ बोली, "मंजू, वह मेरी बहुत इज्जत करता है. उस दिन बारिश में जब मैं उतरने लगी तो छाते में मुझे क्लास तक छोड़ने गया. खुद भीगता रहा, मेरी किताबें भी उसने अपने हाथ में रखीं. फिर एक दिन इतवार को फलवाले की दुकान पर मिल गया. मेरी आंखों में नहीं देखता. बड़ी मुश्किल से बस इतना कह पाया एक दिन, "मिस, आपकी उदासी देख कर मेरा दिल रोने को करता है. हमारी जरूरत पड़े तो बस एक हुक्म देना. जान कदमों पर रख देंगे."

"मगर दीदी, कहां तुम कहां वह."

"ऐसे मत कह मंजू," मनीषा किंचित क्रोध और आवेश के साथ बोली, "ईश्वर के लिए मुझ पर रहम कर. मेरी सारी जिंदगी अकेली कट गयी. और अब एक साथी मुझे मिल रहा है और तू कहती है..."

मंजू ने धीरे से अपना हाथ उसके कंधे पर रखा, "मुझे माफ कर दो दीदी. मैंने तुम्हारा दिल दुखाया. मैं तो मजाक कर रही थी दीदी. देखो न, मैं कितनी खुश हूं."

"सच." मनीषा ने हाथ अपने मुंह से हटा लिया.

"मैं तो प्यार में ऊंच-नीच नहीं मानती. दीदी, मैं क्या नहीं जानती, तुम्हारा प्यार कितना पवित्र होगा."

"मत कह अब ऐसी बातें मंजू. प्यार को जो वह है, वही रहने दे, कुछ मत कह. मैंने यही गलती की शायद जीवन में. मैं नैतिकता के शिखर पर प्यार को ढूंढ़ती रही और वह जीता रहा नीची गहरी घाटियों में. मैं अकेली हो गयी, मंजू." उसके होंठ रुदन में टूट गये. गरम-गरम आंसू फिर उसकी आंखों से बरसने लगे, "जिंदगी जब बीत गयी, तब मैंने जाना कि नैतिकता जिंदगी का साथ नहीं देती." उसका सीना दर्द के आवेश में बहुत तेजी से उठा, "देख, नैतिकता ने मुझे अकेला कर दिया. मेरा कोई भी साथी नहीं रहा. सब एक-एक कर भूल गये, क्योंकि मैं वक्त के साथ नहीं बदली. यह डिस्को का जमाना है पगली. मैं अपने आदर्शों की दुनिया में खोई रही और जमाना आगे निकल गया. नहीं मंजू, नहीं, अब ये जो थोड़े से दिन रह गये हैं, इन्हें मैं नहीं गवांऊंगी."

"मैं विरोध नहीं करती दीदी, मगर..."

"चुप," मनीषा ने उसके मुंह पर हाथ रख दिया, "ईश्वर के लिए चुप हो जाओ. मैं अपने जीवन का सूनापन कैसे भरूं? नैतिकता जीवन-साथी की जगह तो नहीं ले सकती."

"ओह दीदी, ओह दीदी!" मंजू का कलेजा जैसे एकाएक फट गया और न जाने कितनी कितनी करुणा मनीषा के प्रति फूट आयी थी. मनीषा की पूरी जिंदगी जैसे एक टीस बनकर, एक हूक बनकर उसके दिल में उठी और दिल को फाड़ती हुई बाहर निकल आयी, एक दर्दभरी चीख बनकर जो सन्नाटों में गूंजती है, जो सदियों-सदियों इसी तरह जिंदगी के वीरानों को आबाद रखती हैं.

"कल शाम मैं उससे मिलने जाऊंगी मंजू, कल शाम. मैंने उसका प्यार आज स्वीकार कर लिया. मैं तुझसे पूछना चाहती रही पूरे महीने, मगर शर्म ने कुछ कहने न दिया. आज जब उसका प्यार स्वीकार कर लिया तो पता नहीं कैसे जबान अपने आप खुल गयी, तू किसी से कहना मत."

मंजू को लगा, उसकी आत्मा इस प्रेम का विरोध करना चाहती है, वह पूरी तरह मनीषा को बता देना चाहती है कि यह पागलपन है, जीवन की निराशाओं और कुंठाओं ने उसमें इस पागल निर्णय को जगाया है, वह कभी उस ड्राइवर के साथ खुश नहीं हो सकती. उसका जीवन स्तर नहीं, उसका व्यक्तित्व, उसके विचार, उसकी भावनाएं सब उस विकृत समाज से जन्मे हैं, जो राजनैतिक उदारवाद की देन है, जिनकी जड़ें मनुष्य स्वभाव में नहीं, मार्क्स के उन्माद में हैं. किंतु उसके पास शब्द नहीं थे, अगर थे तो होंठों से आगे बढ़ने का साहस उनमें नहीं था. उसने अपने को समझाया कि उसकी खुशी को नहीं छीनना चाहिए. आखिर उसके जीवन के लंबे मरुस्थल में यह पहला खुशी का सरोवर है. इसमें जहर मिलाने का उसे कोई अधिकार नहीं है, किंतु एक भय उसके दिल में घने धुएं की तरह उठा और उसका हृदय इन शब्दों को फुसफुसाने से नहीं रोक सका कि ऐसा नहीं है. वह इसलिए मनीषा से ये बातें नहीं कह रही है, क्योंकि वह जानती है कि मनीषा का मस्तिष्क अपना संतुलन खो रहा है. वह तेजी से किसी भयावने अंधेरे की ओर बढ़ रही है और उसकी बातें नहीं समझ सकती. उसे ये बातें बताना उसे और तेजी से उस विनाश की ओर धकेल देगा, जिसकी तरफ उसे निवृत्ति ले जा रही है. और तब गहरी संवेदना और आत्मिक छटपटाहट के बीच मंजू ने निर्णय किया कि यह समय इन बातों पर विवाद करने का नहीं है. उसे सिर्फ एक काम में अपनी पूरी शक्ति लगा देनी है, उसे किसी भी तरह मनीषा को पागलपन से बचाना है. हो सकता है, दो एक बार उस ड्राइवर से मिलने के बाद वह स्वयं उसकी वास्तविकता जानकर उसे छोड़ दे. रोकने पर वह जिद न पकड़ ले, क्योंकि उन्माद की तरफ बढ़ते लोग ऐसा करते हैं.

अगली सुबह मनीषा बहुत खुश थी. उसकी आंखों में नींद बाकी थी. सुंदर पलकें भारी थीं और आंखों में हल्की लाली थी. शाम को जोगेंदर से मिलने गयी. मंजू ने एक बार कहा, "दीदी, मैं भी चलूं." मनीषा ने विस्मय और प्यार से हंसती आंखों से कुछ देर उसे देखा मानो कह रही हो, "तुम इतना भी नहीं जानती मंजू, इस सफर में एक सहेली दूसरे का साथ नहीं देती. सबको अकेले ही जाना पड़ता है." फिर दोनों में कोई बात नहीं हुई.

जोगिंदर और मनीषा कुछ देर क्वार्टर के पीछे पार्क में घूमते रहे. फिर बारिश होने लगी तो जोगिंदर उसे अपने क्वार्टर में ले आया.

जोगिंदर चाय बनाने लगा तो मनीषा ने नारी सुलभ



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# तीसरा दौरा

▣ अशफाक अहमद

खूबसूरत मिसेज कौल ने अपनी साड़ी की सलवटें दुरुस्त करते हुए और अपने ब्लाउज के बटन लगाते हुए अपने बेडरूम की मद्धिम रोशनी में डॉक्टर महेश से कहा, "समझ गये कि तुम्हें रिपोर्ट . . ." डॉक्टर ने जवाब देने के बजाय सिर्फ अपना सिर हिला दिया. दूसरे दिन पुलिस विभाग को मिस्टर कौल की लाश की पोस्टमार्टम रिपोर्ट मिली. रिपोर्ट में लिखा था—मिस्टर कौल की मौत गला दबाने से नहीं, बल्कि दिल का दौरा पड़ने से हुई है. मिस्टर कौल को शुरू से ही 'हार्ट अटैक' की शिकायत थी और रात तीसरे पहर उन्हें तीसरा दौरा पड़ गया था. ▣

कर्तव्य भावना से यह काम अपने ऊपर ले लिया. तब मनीषा के लाख मना करने पर भी बिस्कुट लेने बारिश में बाहर निकल गया.

वह बिस्कुट लेकर लौटा तो गंध से मनीषा को समझने में देर न लगी कि वह शराब पीकर आया है.

इसके बाद क्या हुआ, यह लिखना बहुत कठोर और फिर भी बहुत परिचित-सा हो जायेगा. पाठक इतना ही समझ लें कि जोगिंदर नशे में वह नजाकत कहीं गिरवी रख आया था, जिसे प्रदर्शित कर उसने मनीषा के सूने मन में राह बनायी थी. वह अचानक उसके दुखों को अपमानित करने लगा. उसने उसे हर तरह लांछनों से पूरी तरह ढक दिया. मनीषा अवाक् रह गयी. उसने उसके चरित्र पर भी, उस चरित्र पर भी, जिस अकेली संपत्ति के सहारे वह जी रही थी, भयंकर और क्रूर शंकाएं व्यक्त कर डालीं. शर्म और बदहवासी के आवेगों ने मनीषा को सुन्न कर दिया. उसे लगा, वह मर गयी.

किसी घोर तंद्रा में वह जा रही थी, जहां कुछ दृश्य और शब्द थे, जिन्हें साफ-साफ देख लेने और पढ़ लेने को उसका मन पूरा जोर लगा रहा था. वे शब्द और दृश्य जैसे मन को ललचाने को कुछ दूर तक स्पष्ट होते जाते थे और फिर जोगिंदर ने उसे गिरा दिया था.

अब सब शांत था. बारिश रुक गयी थी. एक भयानक आघात उसके हृदय पर लगा, क्योंकि अब उसने देखा, उसकी लाश नग्न थी.

इतनी उत्तेजना, इतने दुख, इतनी शर्म, इतनी बदहवासी ने उसके जिस्म से पसीने को खोद-खोदकर उसकी त्वचा के प्रत्येक रोम पर उभार दिया था, ठीक जैसे कमल-पत्र ओस से भीग जाता है, ऐसे ही स्वेद कणों से उसका तन भीग गया था. जोगिंदर अब उसके शरीर से अलग होकर सो गया था.

कब वह उठी, कब उसने कपड़े पहने, कब वह बाहर निकली—इतने करीब की यह स्मृति भी उस धुंध में नहीं थी. एक स्वप्न था, जिससे वह निकल आयी थी, एक दूसरे स्वप्न में, रास्ते पर उसके लड़खड़ाते, कभी तेज होते, कभी धीमे पड़ते कदम पड़ रहे थे. कुछ दूर चलने के बाद एक भयानक प्रश्न उसके मन में उठा—वह कहां जा रही है?

एक होनी थी, जो हो गयी थी, एक ऐसी होनी, जिसके होने के बाद होने को कुछ नहीं रह गया था. उसे आश्चर्य हुआ, ऐसा क्या था इस होनी में, जो इसे एक अंतिम और निश्चित रूप दे रहा था. यह ऐसा भी नहीं था, जैसा किसी को चिता में फूंककर लौटते हुए होता है. तब मरने वाले का दुख साथ होता है, लेकिन यहां जो मर गया था, उसका दुख साथ नहीं था, उसकी जगह एक भावहीनता थी.

कुछ तय करके वह होस्टल पहुंची, मगर कमरे तक पहुंचते-पहुंचते उसे लगा कि कुत्ते उसे खींच रहे हैं. यह अनुभव इतना सच्चा था कि उसने कितनी बार ही बांहों और टांगों से उनके जबड़ों को हटाया, मगर वे उसके मुंह पर भी काट रहे थे. उसके हाथ-पैर-मुंह पर कुत्ते ही कुत्ते चिपटे हुए थे. उसके सारे बदन में जलन होने लगी और तब एक भयानक प्रतीत हुई—वह पागल हो गयी है.

सामने नदी थी. वह झुककर पानी पीने लगी. पानी की बूंदें मुंह पर लगीं तो उसे बहुत अच्छा लगा. वह पानी में उतर गयी. अब कुत्ते नहीं थे. सारी सृष्टि अचानक खिलखिलाने लगी, एक निर्दोष सुंदरी की तरह, जिसकी दिव्य त्वचा सलमे-सितारों की तरह जगमगा रही थी. वह भी हंसी, किंतु उसकी पकड़ अपने पर और ढीली हो गयी थी. वह निचुड़ती साड़ी अब पैरों तक पहुंच गयी थी. अब सिर से एड़ियों तक वह पूरी एक साड़ी बन निचुड़ रही थी. लहरों का एक झटका-सा लगा और वह गिर गयी. पूरा तन पानी से भीगा तो एक शीतलता ने उसे चारों ओर से लपेट लिया. यह स्पर्श कैसा था, उसके दिमाग में आश्चर्य की एक कौंध आयी, जब वह किशोरी थी और कभी-कभी यों ही अकारण परेशान हो जाती थी और कुछ नहीं सूझता था, क्या करे और मां की गोद में बैठ जाती थी. वे यौवन की उलझनें थीं, जो तब शुरू हो रही थीं और आज इस घड़ी बिना सुलझे ही चली गयी थीं.

फिर जोगिंदर सामने आया, मगर अब बहुत से तारे दिल की रात पर खिल आये थे. वह मुस्करायी—उसे आश्चर्य हुआ, यह कौन-सी दुनिया थी पानी की, जहां सारी बातें इतनी सहल हो गयी थीं, न कोई जलन थी, न कोई प्रश्न. न कुछ खोने की प्रतीति, न वह निचुड़ती साड़ी की तरह ऐंठ-ऐंठकर गिरती जिंदगी की बूंदें. तुझे मैंने माफ किया जोगिंदर, वह जल्दी-जल्दी बोली, क्योंकि पानी मुंह में भरने लगा था.

उसके डूबते हृदय में एक तेजी उस क्षण आयी—कोई कटुता तो नहीं रह गयी किसी के लिए, मगर अब इतनी मोहलत कहां थी. चांद जो मर चुका था, अब बादलों के घूरे से बाहर निकल पानी में झांक रहा था. बादलों से ढक जाने पर बीच-बीच में लाश सांवला कफन ओढ़ लेती थी. और तब बदहवास-सा चांद बादलों को उधेड़कर फिर मनीषा की तैरती लाश को उजला कफन उढ़ा देता था. □



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कुचरने दो कागा को

: विकास कुमार झा

कथरी उढ़ककर ढिबरी बुझाने के लिए तेतरी उठी तो ठंड से देह सिहर गई उसकी. पछवा अगर हल्के भी सिहके पर होती है बेहद जान मारूख. अभी थोड़ी देर पहले तक ढिबरी की लौ थरथरा रही थी और बिछावन पर से तेतरी टुक-टुक देख रही थी. सच, लौ की थरथराहट भी देखने की चीज होती है. . .जैसे किसी का दिल कांपता हो. . .अभी ताखे के पास जाकर खड़ी हो गयी वह तो लौ सहसा थिर गई. . .यह बिचारी कांपती लौ और वह खुद दोनों एक जैसे ही तो हैं, दोनों को किसी की छांह चाहिए. . . तेतरी सोचती है.

उठी ही है तो पानी-वानी पीकर निश्चिंत हो फिर सो ही जाएगी. कब से कंठ सूख रहा है. बाहर ओसारे पर आकर घड़े से थोड़ा पानी लेकर पिया उसने. गुजगुज अन्हरिया में कैसा भयावह तो लग रहा है आंगन. ऐसे में ही भूत-प्रेत टहलते हैं या कि बुरी हवा-बसात बहती है. सहमकर जल्दी से भीतर आकर उसने सांकल चढ़ा दी और कथरी में दुबक गई. पेशानी पर हाथ मोड़कर रखे हुए आंखें मीच-मीचकर इस घुप्प अंधेरे में किस शै को रोज तलाशने की कोशिश करती है तेतरी? वह खुद भी तय नहीं कर पाती. उसे लगता है कि यह कोठरी नहीं अंधी काली नदी है और वह नन्हीं मछली जाने कहां बही जा रही है. . .मुंह अंधेरे जब वह पहाड़ी पोखर नहाने जाती है तो देर तक एकटक पोखरे के पानी की सतह को देखती रहती है. . .सुबह के सफेद रंगों से पुती हुई पानी की सतह. . .उसे लगता है कि पहाड़ी में जितना पानी है उतना ही उसका दुख. . .

पोखरे के बीचोंबीच गड़ी लकड़ी की जाठ को देखती है वह, पोखरे के पानी को नहीं. . .दर्द के उतार-चढ़ाव को मापता हुआ लकड़ी का जाठ. . .नहीं-नहीं. . .जाठ की जगह वहां खुद तेतरी ही तो गड़ी हुई है. . अपने दुख को मापती तेतरी . . .अपने दर्द से सीझी हुई तेतरी . . . जब-जब

**क्या किसी हंसती–खिलखिलाती औरत को देखकर उसके मन का अंधेरा टटोला जा सकता है . . .! सीधी-सादी जिंदगी में अनायास वे कौन से मोड़ आ जाते हैं जिन्हें अपना रास्ता बना लेने के बाद सिवाय प्रायश्चित के और कुछ नहीं किया जा सकता . . .**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

▣ विकास कुमार झा
▣ बिहार के युवा-पत्रकारों में उल्लेखनीय नाम. 'बिहार के कहानीकार' कहानी संग्रह के संपादन के साथ-साथ एक कहानी-संग्रह भी शीघ्र प्रकाश्य.
▣ संप्रति 'माया' से संबद्ध.

बाढ़ आती है याकि बरसात का मौसम,पोखरे में पानी बढ़ जाता है और जाठ पर पानी की लकीर कुछ और ऊपर सरक जाती है. . .पर तेतरी की नदी में तो हर रात दुःस्वप्नों की बाढ़ आती है. ..तेज-तेज बहती हुई और लगता है कि उसमें जाठ भी डूबकर विलीन हुआ जा रहा है. . .क्या करे वह. . . आखिर क्या करे. .. बचाव के लिए किसको आवाज दे!

भोर से फिर सब कुछ ठीक हो जाता है. भोर से लेकर सोने से पहले तक. . .माय-बाबू सोए ही रहते हैं और 'छिट्टी' लेकर वह दोनार की मछली मंडी में पैकारीवालों से मछली खरीदने चल देती है. मंडी में भी अजीब भिनभिनाहट मची रहती है-छीना झपटी. . .धर पकड़. मोटे-मोटे पैकार बैठे रहते हैं पालथी लगाए और शैतान की माफिक मुस्कुराते रहते हैं. कल ही तो जुगसार पैकार ने तेतरी का हाथ पकड़ लिया था, "गै तेतरिया, तू भी तो सोन मछली ही है न. . . सुंदर-सी. . .आ तुझे भी छिट्टी में रखकर बेच दें. . ." सभी मलाहिनें जोरों से हंस पड़ी थीं. तेतरी को हुआ कि थूक दे जुगेसरा के मुंह पर लेकिन हाथ झटककर वह अलग हट गई... पहले मछली मंडी से लाने की समस्या ही नहीं थी. बाबू दूसरे के जलकर में जाकर मछली मारता था तो एक चौथाई हिस्सा मिलता था. बाबू कहता है कि मछुआ समिति बनने के बाद से तो मलाहों को जलकर मिलना संभव ही नहीं. . . सब जलकर तो पैसे वाले ठेके पर ले लेते हैं.

"हम पानी पर जीने वाले लोग पानी से भी बेदखल कर दिए गए. . ." जब भी चर्चा चलती है तो बाबू की आंखें नम हो जाती हैं. तेतरी बाबू के दर्द को समझती है. . .छूट रहे पुश्तैनी पेशे के दर्द को, और तब समझाने के लिए कहती है, "बाबू हो, जलकर और नदी के त दूर रहे द, ई पूरा संसारे कुछ लोग ठीका पर लेते हैं. . . मछरी नियर आदमियों के पैकारी हो रहल है. .. "उसकी बात सुन बाबू हौले से बिहुंस कर रह जाता है. मंडी से मछली लेकर जब मछहट्टे में आती है तो अपने बैठने की जगह झाड़ू से बुहार कर साफ करती है. . . पानी छिड़कती है फिर कठौते में पानी भरकर मछलियों को सजा देती है और ग्राहकों को आवाज लगाने लगती है. जब वह सात-आठ ग्राहकों को निबटा चुकी होती है तब जाकर मां आती है घर से. कोई भी नया गाहक मछहट्टे में घुसेगा तो यह शर्तिया है कि वह तेतरी के पास जाकर ठिठक जाएगा. गाहक की नजर तेतरी पर होती है. तेतरी की मोहक हंसी और आम के फांक सरीखी कटावदार आंखों पर सब कट जाते हैं. तेतरी हंसेगी नहीं तो मछली बिकेगी कैसे? छींटदार तंग अंगिया और चटखदार साड़ी में छरहरे बदन की तेतरी का रूप और निखर उठता है. तिस पर कान में झूलते चांदी के कर्णफूल और नकबेसर. . . हर सुबह जब वह मछहट्टे में मछली लेकर आती है तो मछहट्टे के कोने पर का रमचनरा पनवाड़ी सिसकारी छोड़ते हुए मुस्कराकर कहता है, "हाय. . कंटीली चंपा. . ." तेतरी आंख तरेरकर उसे घूरती है पलटकर, और वह हाथ जोड़. . . फिक्क से हंस देता है. ग्राहकों को मछली के लाल गलफड़ उलटाकर ताजा साबित करने की जरूरत उसे नहीं होती. लोग सिर्फ ताजातरीन तेतरी को देखेंगे. . सीने के उभार पर नजर फरेंगे और किलो भर मछली तुलवाने को कह देंगे. . . कुछ ही देर में कठौते की सारी मछलियां बेच-बाचकर दोनों मां-बेटी निश्चिंत हो जाती हैं और सभी मलाहिनें कुढ़कर रह जाती हैं. मछहट्टे की सभी मलाहिनें कहती हैं, "तेतरी माय. . . तेतरी की जवानी को भंजा रही है." जगतरिया मलाहिन कहती है, "तेतरी गे इ दू दिन का मेला है. . दू दिन का . . गहिंकी सब आज तुझ पर मक्खी की तरह मंडराता है. आज तेरा मरद तुझे ले जाय फिर देखना तेरी माय के कठौते पर मक्खी भिनकेगी. . पर तेरी माय इसलिए कभी चाहेगी ही नहीं कि घरवाले के संग तू रहे. .. चांदी की मछली है न तू. . . " ये बातें उसे हर रोज सुनाकर कही जाती हैं. शुरू में इन सब बातों से तेतरी का पारा गर्म हो जाता था और वह मलाहिनों से गाली-गलौज तक करने पर उतर आती थी. पर अब इन बातों से उसे गुस्सा नहीं आता. पता नहीं कौनसी उदासी आकर दबोच लेती है उसे. . . उसका दिल डूबने लगता है. उसकी सहेली सबित्तरी कहती है, "तूने सोचा भी है कभी अपनी जिनगी पर. . .? मां-बाप के बाद अकेले पहाड़-सी जिनगी कैसे काटेगी रे. . . तेतरी तू अपने हाथ से बिक्ख क्यों पी रही है?" तेतरी कुछ नहीं बोलती है और मुंह पोंछने के बहाने आंचल से आंखों के गीले कोर को पोंछ लेती है और फिर एकबारगी मोहक हंसी बिखेरती कहती है, "सबित्तरी, हम मर जाएंगे तो तुझे बहुत दुख होगा न. . . पर सब्बो जहर हम पर असर करेगा ही नहीं और हम अजर-अमर रहेंगी. . . जहर पीकर भी." सवित्तरी उसे हंसते देखती रहती है अपलक. . वह तेतरी की हंसी के मर्म को समझती है, "तेतरी, क्या सच्ची में तू हंस रही है मेरी देह भुलक गई है रे!" तेतरी सिर झुका लेती है. लगता है कि समूची देह कठुआकर ठिठुर जाएगी. कठौते में रखी हुई मरी मछलियों की स्थिर लाल पुतली को देखती है वह और फिर से मछलियों को पानी में उलट-पलट देती है.

पेशानी से हाथ हटाकर कथरी के कोर को कसकर अपने चारों तरफ लपेट हाथ सीने पर रख लिया है उसने. सीने पर हाथ रखने से पूरी धड़कन सुनाई देती है उसे. . जैसे लौ कांपती हो. मां-बाबू बगल के कमरे में सो रहे हैं. और वह...? अपने हाथों से पूरे शरीर का स्पर्श करते हुए सुखद स्मृतियों में डूब गई है तेतरी. लगा, जैसे खुद उसके अपने हाथों ने नहीं बिसेसर ने छुआ हो. हां, बिसेसर, उसका मर्द. सिहरन से भर गई वह. जो भी हो अपना आखिर अपना ही होता है. अग्नि देवता के सामने यूं ही शपथ नहीं खायी जाती. घरवाली



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को उसका मरद कभी मारपीट न करे तो प्रेम कैसा? ये सब भी तो सुहाग-भाग ही होता है. जिस पर अपना हक होता है, उसी पर न सब कुछ छजता है. अक्सर उसके होंठों पर यह गीत तिर जाता है और उसकी आवाज रुंध जाती है :

**कोने बाबा के पोखरी में रहुआ मछलिया. . .**

**कोने दुलहा फेंकू महाजाल है. . .**

मोह के किस महाजाल में तड़प रही है तेतरी. . . किस महाजाल में वह सोचती है कि जाल फेंक कर मछेरे ने नदी से निकाला तो था उसे पर फिर उठाकर उसी नदी में फेंक दी गई है वह. हे सतीमातर, हे कमला माय, यह किस कसूर का दंड है? तेतरी को होता है कि अपनी नासमझी पर बुक्का फाड़कर रोने लगे. पिछले दो सालों से तो वह नैहर में ही रह रही है. शादी के ठीक छः सात महीने बाद से. तेतरी हैं तेज मिजाज. है कहां, थी कभी. इसी तेज मिजाजी का फल भी तो भुगत रही है वह. अक्सर पी-पाकर जब बिसेसर घर आता तो मार-मारकर लुढ़का देता उसे. और एक दिन घर बंद कर बिसेसर ने उसे बेहोशी की हद तक मारा था. तेतरी सिर्फ खुद ही नहीं चूर हुई थी. . . उसके कोख का पहला सपना भी टूट गया था. बदहवास हो गई थी तब वह. उसका दोष इतना ही था कि पड़ोस का कन्हाई जो रिश्ते में उसका देवर ही लगता कभी-कभी बातचीत करने चला आता. बिसेसर का पारा सातवें आसमान पर चढ़ गया था, "साली, मछहट्टा समझती है घर को! सब तेरा मरद. . .निकल यहां से. . .यह रंडीपाड़ा नहीं. . ." और तभी मां के पास लौट आने का फैसला किया था. इस बीच कई बार ससुराल से आदमी भी उसे लिवाने आया. शायद बिसेसर को अपनी गलती का एहसास हुआ था इसलिए तो आखिर-कार खुद भी वह आया था. लेकिन मां ने साफ मना कर दिया, "हम अपनी बेटी को चंडाल के हाथ नहीं सौंपेंगे. . . हरगिज नहीं." बिसेसर बार-बार यही कहता रहा, "बस एक बार मुझे तेतरी से मिलने तो दीजिए. . ." पर मां अड़ी रही. बाबू चुप थे और शायद मां से सहमत थे. किवाड़ के पल्ले के पीछे खड़ी तेतरी को हुआ कि वह चीख-चीख कर कहे कि हां वह जाएगी बिसेसर के साथ. . . उसका जी हुआ कि कहे, 'मां, बाबू के साथ हर रात सोना आज भी तेरी जरूरत है. . . पर मेरी जरूरत क्या है तुमने सोचा? अंधेरी कोठरी में भयावने सपने मुझे हर रात डंसते हैं. मां. . .! मैं हर रात सूनी कोठरी में जब दम तोड़ रही होती हूं, उस समय मां, तुम और बाबू एक बिस्तर पर एक कथरी में सोये रहते हो. . . तब मुझे मौत से बचाने नहीं आता कोई!' लेकिन उसे लगा कि ऐन मौके पर आवाज कहीं बिला गई है.

नींद नहीं आने पर यही ऊल-जलूल सब सूझता है— बायस्कोप के फोटो की तरह. उसकी आंखों के सामने भूरी आंखों वाले उस नौजवान सुंदर गाहक की याद तिर गयी है जो अक्सर मछली खरीदने आता है. पहले तो मछहट्टे की और दूसरी मलाहिने उसे अपनी तरफ आने की आवाज देती थीं लेकिन वह किसी पर नजर तक न डालता और सीधे तेतरी के कठौते के पास आकर खड़ा हो जाता. सो अब सभी मलाहिनें समझ गई हैं कि वह तेतरी का ग्राहक है. पैसे देते वक्त वह उसके हाथ को आहिस्ते से छू लेता है और बनता ऐसे है जैसे कुछ हुआ ही न हो. पर तेतरी सब समझती है और रोमांचित हो उठती है. जाने कैसा-कैसा तो लगता है. . . जब वह उसे देख रहा होता है टकटकी बांधकर और वह हंसुए से मछली बना रही होती है. पर वह इन सब खयालों को तुरत झटक देती है. सच को तो वह झेल रही है और सपने सिर्फ सपने हैं. पाव भर की हैसियत है उसकी और वह बड़े लोगों के संग अपनी बात सोचेगी. . . ?

लगता है भोर हो आई है. कौए आंगन में कुचरने लगे हैं. वह उठकर कौओं के बीच रात में बचे रोटी के टुकड़े कर आंगन में बिखेर देती है. अभी कुछ दिनों से पिछवाड़े के नीम पर एक कागा रोज आकर कुचर जाता है. तेतरी पत्थर मारकर हर रोज उसे उड़ा दिया करती है. उसका मन आशंकाओं से भर जाता है. कागा कुचरे मानों जरूर कोई असगुन. . .

आज शाम उसकी ससुराल तरफ का कोई आया था. बाबू से कह रहा था कि बिसेसर ने पिछले सप्ताह दूसरी शादी कर ली. दीवाल की ओट से चुपचाप उसने सब कुछ सुना. उसकी आंखें डबडबा आईं. ताखे पर जलती ढिबरी को देखा उसने. ऊपर की तरफ भागती कालिख उगलती लौ से दीवाल का कुछ हिस्सा पूरा काला पड़ गया था. जाने क्यों कांपते हाथों से उसने उस काले हिस्से को उंगलियों से छुआ. . .

पिछवाड़े के नीम पर कागा तब से आज फिर कुचर रहा है. लेकिन तेतरी ने आज पत्थर मारकर उसे नहीं उड़ाया है. . . □

● 6, विद्यापति मार्ग, पटना (बिहार)

## गजल

सिर दर्द, कभी बार-ए-दिलोजान हुई है.
पर मुश्किलों से जिंदगी आसान हुई है.

कुछ बात तो है रूबरू जो देखकर मुझे
कातिल की नजर बेतरह हैरान हुई है.

काली अंधेरी रात में बादल को चीरकर
कोई एक किरन मुझपे मेहरबान हुई है.

हर बार इक मसीहे को सूली पे टांगकर
हैवानियत दो दिन को पशेमान हुई है.

टटन घुटन है भूख है, पर ये भी सुना है
जम्हूरियत में जनता सुलेमान हुई है.

कल तक तो था हासिल इसे दर्जा-ए-इबादत
अब दिलबरी-दिलजोई का सामान हुई है.

□ सीतेश आलोक



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# यायावरी का आलम ही कुछ और होता है . . . यानि सागर सरहदी !

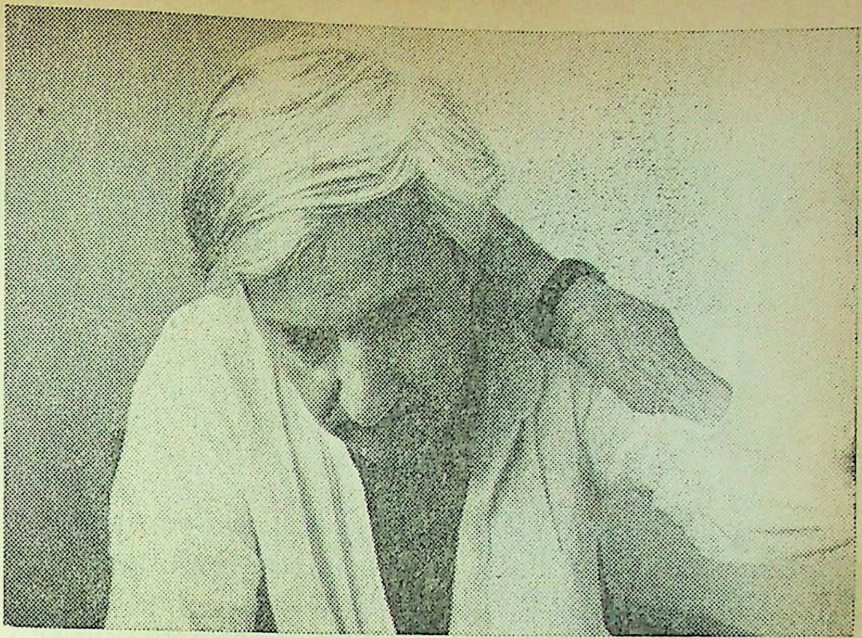

## भरतमुनि के वंशधर सूत्रधार

**बंबई में हिंदी रंगमंच का विकास हास्य की सीढ़ियों पर हुआ है. क्योंकि इस भाषा की स्थिति इस शहर में महरी की रही है. जिससे काम लिया जा सकता है. उत्पादन का जरिया बनाकर पैसा कमाया जा सकता है पर इसे प्रतिष्ठित करना अपने पेशे में छेद करना होगा. यह उनकी मान्यता रही है जो हिंदी को माध्यम बनाकर हवेलियां खड़ी करते रहे. इसमें सबसे बड़ा हाथ फिल्मी लोगों का रहा. . . इस बार सूत्रधार की मुलाकात सागर सरहदी से.**

बड़े से बड़ा फिल्म निर्माता चाहे वह बंगाली रहा हो; पंजाबी या दक्षिण भारतीय. . .मराठी या गुजराती; हिंदी के सवाल पर उसकी मान्यता इस भाषा के बारे में केवल इतनी ही रही कि इसके जरिए पैसा कमाया जा सकता है. इस काम के लिए उन्हें कुछ व्यवसायिक तो कुछ रचनात्मक लेखन के नाम मिले. **राही मासूम रजा, शब्द कुमार, गुलजार** और **पंडित नरेंद्र शर्मा** प्रमुख रहे. अपने-अपने तर्कों पर इन्हें किसी न किसी बिंदु पर समझौता करना पड़ा लेकिन रचनाधर्मिता का कोई न कोई हिस्सा वहां कहीं जीता-जागता दिखाई देता रहा. यहीं पर मूलतः व्यवसायिक लेखन की बाढ़ आयी. गुलशन नंदा और जावेद का संप्रदाय आया. और हिंदी को बाजार में उतारा गया क्योंकि हिंदी ही ऐसी भाषा रही जिसका बाजार इन बंबइया लोगों के लिए खाली रहा. लेकिन बंबई खास में हिंदी की खपत न के बराबर रही. सिनेमा घरों में जिस हिंदी के दर्शक को देखा गया वह हिंदी के लिए नहीं, दिलीप से लेकर अमिताभ तक और प्राण से लेकर राज बब्बर तक को देखते रहे. यह फर्क स्पष्ट रूप से देखना हो तो हिंदी का रंगमंच देखकर आसानी से निर्णय लिया जा सकता है. यहां मराठी रंगमंच हो या गुजराती. यहां तक कि अंग्रेजी में गंभीर नाटकों का चयन होता है और उन्हें प्रदर्शित किया जाता है लेकिन हिंदी में हल्के-फुल्के हंसी-गपोड़िये ही होते रहे; और अगर कहीं गंभीर नाटक उठाये भी गये तो दर्शकों के अभाव में बंद करने पड़े. इन्हीं सशक्त नाटककारों और रंगकर्मियों में एक नाम है **सागर सरहदी** का. जिन्होंने बंबई में धारा के विरुद्ध जाकर हिंदी के गंभीर और बुनियादी सवालों

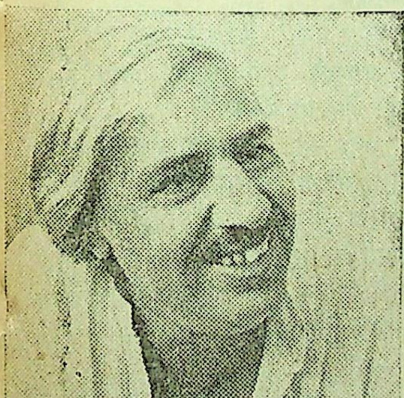

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

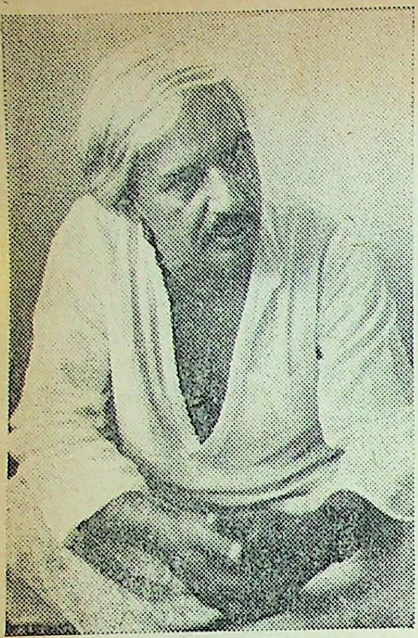

छाया : राकेश सक्सेना

को उठाकर बतौर एक लेखक, निर्देशक और अदाकार के आये और असफल होकर सफल फिल्म-निर्माता, निदेशक (बाजार) बनने को मजबूर हुए.

सागर सरहदी से लंबी-बातचीत का छोटा अंश दे रहा हूं. इसके पहले सूत्रधार उनसे मुआफी मांगना चाहता है जो हिंदी रंगमंच में अब गंभीरता से काम कर रहे हैं और इसके लिए दर्शक बना रहे हैं; इमनमें हम **नादिरा बब्बर, ओमपुरी, राजा बुंदेला, राज बब्बर, नसीरुद्दीन शाह, रवि बासवानी, रमेश तलवार, सत्यदेव दुबे** और विशेष रूप से सथ्यू के शुक्रगुजार हैं.

हां तो, सागर सरहदी से मिलिए. लेकिन कैसे. सूत्रधार ने नटी से कहा. (नटी और सागर के रिश्ते इतने करीबी हैं कि दोनों एक दूसरे को गाली तक दे देते हैं.) नटी ने कहा सागर से, और सागर ने चाय पर सूत्रधार को बुला लिया. बातचीत गालियों से ही शुरू हुई.

**—नाटकों से शुरू करूं?** सूत्रधार ने पूछा.

मेरी असफलताओं से ही शुरुआत करना चाहते हो तो करो! मजा आयेगा. . . चलो यह भी हो जाये! सागर ने तपाक से जवाब दिया.

**—तो शुरू करिए!**

मैं नौ साल का था. गांव में था. मेरा गांव अब पाकिस्तान में है; उन दिनों रामलीला देखा करता था. एक साल यह मन हो आया कि चलो इसमें नाटक करके देखें. लेकिन साहब! मुझे लेने के लिए कोई तैयार नहीं. इसी बीच हुआ यूं कि किसी दिन एक वक्त पर (स्साला) राम बीमार हो गया और उसका पार्ट मुझे मिल गया. खूब जमकर पाठ याद किया. लेकिन एक वक्त पर जब स्टेज पर चढ़ा तो साहब पूछिए मत. भूल गया. कुछ नहीं बोल पाया. एक शब्द भी नहीं. तब से अब तक आज तलक अपनी जिंदगी का यही लब्बोलुबाब है. एक वक्त पर जुबान ही नहीं खुलती. (एक लंबी-सी गाली.)

**—सागर साहब आपकी गालियां तो अच्छी लगती हैं.**

तबियत से देता हूं यार! ऐसे ही थोड़े है कि फर्ज अदायगी कर दी. जिंदगी के हर हिस्से को इत्मिनान से जिया है, देखा है, भोगा है. उसे कहां तक छोड़ पाऊंगा. नाबालिग था तभी (देश का) बंटवारा हो गया. एक बड़े से काफिले में हम निकल पड़े. दरबदर हो गये. यह मामूली बात नहीं थी. उसका असर आज तक दिमाग पर है. वह रामलीला, गांव, लोग परती जमीन, तालाब, कुआं. यह सब छोड़कर रहे हैं. हम दूसरी तरफ जा रहे थे. कहा जा रहा था, अपने देश जा रहे हैं. आज तक यह समझ में नहीं आया कि सागर यह देश है, तो वह क्या था जिसे छोड़ना पड़ा था. . . !

**—आपके लेखन पर इसका प्रभाव. . .**

जाहिर है. वह कहां छूटने वाला. रंगमंच हो कहानी, स्क्रिप्ट या लेख, घूमटहल कर वहां पहुंच जाना होता है.

**—अब रंगमंच पर आइए!**

और मुंह लटकाकर वापस जाइए. (ठहाका) मैंने शुरू में ही बताया न, कि असफल रहा हूं. देखिए बंबई के लोग जो देखना चाहते हैं वह बहुत हद तक गैर-जरूरी देखना होता है. गंभीर विषय पसंद नहीं किया जाता हिंदी में. अब तो शायद अच्छे नाटक (हिंदी में) होने लगे हैं. लोग देख भी रहे हैं. सथ्यू साहब हैं; रमेश तलवार हैं, नादिरा बब्बर हैं. अब लोग गंभीरता से देखने लगे हैं लेकिन मैं तो फ्लॉप गया हूं. शायद इसकी वजह यह भी रही कि मैंने प्रचार पर कम जोर दिया था. या टिकट नहीं बांट पाया था.

पृथ्वी थिएटर में है. कुछ लोग और हैं जो गंभीरता से कर रहे हैं. मैंने जो नाम गिनाये हैं. . .

**—आपने सत्यदेव दुबे का नाम नहीं गिनाया.**

(ठहाका.) दायें बाजू का कारीगर है. वनमैन शो. डाइरेक्टर, एक्टर, डिजाइनर, अश्वत्थामा. राइट रिएक्शनरी.

**—आपका क्या खयाल है, रंगमंच फिल्म और वीडियो के खींचतान में कहीं तक रुक पायेगा?**

कत्तई रुकेगा. इसमें रंगमंच ही हीरो है चाहे वह फिल्म हो या वीडियो रंगमंच ही आता है. लेकिन एक बात जरूरी लगती है और वह है कि रंगमंच को जनसामान्य तक पहुंचाया जाये. यह तभी संभव है जब कि रंगमंच जनसामान्य के करीब जाये. . . अपनी बात और स्पष्ट कर दूं. जब हम जनसामान्य की बात करते हैं तो इसका मतलब यह नहीं कि 'स्ट्रीट प्ले' करें, या खुले में पहुंच जायें बल्कि आम आदमी की समस्याओं को छूते हुए उन तक पहुंचें.

**—आपने कुछ किया?**

करता रहा हूं.

**—नतीजा?**

गोल.

**—फिर!**

फिर क्या! लेकिन थका नहीं.

**—आपकी एक फिल्म 'बाजार' ने बड़ा हंगामा किया?**

वही तो. सच की कहानी है. मैंने थोड़ा-सा परिवर्त्तन किया है. यह एक समस्या से जुड़े हुए लोगों की कहानी है. लोगों ने पसंद किया. फिल्म सफल हो गयी लेकिन यदि रंगमंच में आता तो शायद पिट जाता.

**—आगे?**

एक फिल्म और उठा रहा हूं. 'तेरे शहर में'. न्यायपालिका को लेकर है. देखिए क्या होता है! □

**अगले अंक में. . .**

**रवि बासवानी**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# व्यक्तिगत संबंध और अमानवीय पतनशील मूल्य

□असगर वजाहत

हरीश पाठक का पहला कहानी संग्रह 'सरेआम' पढ़कर सबसे अधिक ध्यान जाता है उनकी कहानी की तनावपूर्ण भाषा पर. उनका शिल्प 'डायरेक्ट नरेशन' का शिल्प है जिसमें डायरी लिखने या लंबी बातचीत करने वाली शैली के तत्त्वों को मिलाया गया है. तनावपूर्ण भाषा बिंबों प्रतीकों तथा अन्य सहायक तत्वों के साथ-साथ कथानक को आगे बढ़ाती है. प्रायः यह लगता है कि 'तनावपूर्ण' शैली कहानी के कथ्य को प्रभावशाली बना पाने में समर्थ नहीं है, बल्कि कहानीकार केवल लोभवश या यह समझकर कि उसकी टेंस भाषा और नाटकीय शिल्प कथानक को प्रभावशाली ढंग से सामने रखने में समर्थ होगा, यही करता चला जाता है. प्रायः प्रत्येक कहानी कहने का ढंग यही है. इस तरह शिल्प के प्रति यह रवैया हरीश पाठक की सबसे बड़ी कमजोरी है. क्योंकि कहानी शुरू करते ही वे भाषा और शिल्प का इस्तेमाल पूरी नाटकीयता और तनाव के साथ करते हैं. यह तनाव पूरी कहानी में बना रहता है और इस तरह अपना प्रभाव खो देता है.

उनकी प्रायः सभी कहानियां व्यक्तिगत संबंधों में आये अमानवीय पतनशील मूल्यों के चित्रण की कहानियां हैं. कुछ कहानियों में इन स्थितियों को लेखक ठीक से संजो पाया है और अपना ध्येय पाने में सफल रहा है. कहीं-कहीं अतिरिक्त भावुकता नाटकीयता तथा शिल्प के तनावपूर्ण होने के कारण कहानी इतना अधिक प्रभाव डालने की कोशिश करती है कि उसका कोई प्रभाव ही नहीं पड़ पाता. कथ्य के अनुसार शिल्प बदलने का काम भी हरीश पाठक नहीं करते.

पहली कहानी **'माई-बाप'** से अंतिम कहानी **'सवाल दर सवाल'** एक से ही अंदाज में कही गयी कहानियां हैं. कुछ कहानियों में जैसे **'कितने सच'** में लेखक अपने केंद्रीय पात्र के प्रति पाठकों के मन में करुणा और सहानुभूति पैदा करने के लिए ऐसे प्रसंग लाता है कि अन्य पात्रों के साथ साथ केंद्रीय पात्र की विश्वसनीयता भी खंडित होती दिखाई देती है.

**'कितने सच'** में पापा एक निरीह प्राणी हैं जिनके विरुद्ध सभी लोग षड्यंत्र करते दिखाई देते हैं. वह अच्छे लोगों की तरह सब कुछ सहते चले जाते हैं और दूसरे बुरे लोग बुरे लोगों की तरह की बुराई उनके साथ करते चले जाते हैं. संक्षेप में यह प्रेम कहानी है जो उसी त्रिकोण पर आधारित है जिसका आविष्कार नयी कहानी के दौरान किया गया था. पापा, सोम, मम्मी का यह त्रिकोण तथा 'मैं' द्वारा इस त्रिकोण को सामने लाने की कोशिश में कहानी पर से लेखक की गिरफ्त ढीली हो गयी है.

संग्रह की पहली कहानी एक अर्थ में राजनीतिक कहानी है क्योंकि इसमें अवसरवादी बुर्जुआ राजनीतिज्ञ द्वारा अपने हितों के लिए एक साधारण आदमी द्वारा विरोधी की हत्या करना दिखाया गया है. संग्रह की दूसरी कहानियों की तुलना में यह अच्छी कहानी मानी जायेगी.

इसी तरह **'विरुद्ध'** कहानी भी संग्रह की एक सशक्त कहानी है जिसमें एक साहित्य प्रेमी-कम-सेठ के यहां आयोजित गोष्ठी में एक जागरूक और विद्रोही किस्म के साहित्यकार का अपमान किया जाता है. छोटे शहर की पृष्ठभूमि में लिखी गयी इस कहानी में लेखक ने अच्छी समस्या को सामने रखा है. साहित्य और संस्कृति का हश्र सेठों की छत्रछाया में क्या हो रहा है? एक ईमानदार साहित्यकार के लिए क्यों सेठों के छत्रछाया में जाना आवश्यक लगता है? अंततः इस प्रकार के संबंधों का अंत कहां होता है?. . . **"आज की क्रूर व्यवस्था जब आदमी के हाथों से रोटी छीन रही है और उसे चुपचाप नंगे बदन फुटपाथ पर सोने के लिए मजबूर कर रही है. उसके खिलाफ पूंजीवाद निरंतर षड्यंत्र. . ."वह आगे बोल नहीं पाया—दो मोटे-तगड़े नौकरों ने उसे खींच लिया. . . ज्यों ही वह संभलने को हुआ, त्यों ही जीने पर खड़े एक नौकर ने उसे जोरदार धक्का दिया. उसकी चेतना समाप्त हो गयी. और 'धम्म' के साथ वह नीचे कीचड़ के करीब आ गिरा.**

**'कितने दिन और'** भी संग्रह की अच्छी कहानियों में है. यह पिता और पुत्र के बीच के संबंधों की कहानी है. बड़ा बेटा पिता और मां को अकेला छोड़कर शहर चला जाता है. पैसा-वैसा देता रहता है पर वह आत्मीयता नहीं दे पाता, जिसे उन बूढ़े लोगों को सबसे ज्यादा जरूरत है. छोटा बेटा भी विवश होकर शहर चला जाता है. इस कहानी में हरीश पाठक अतिरिक्त नाटकीयता से भी बचे हैं तथा नायक और खलनायक बनाने का मोह भी नहीं किया है.

**'पुल टूटता हुआ'**, **'सरेआम'**, और **'दरअसल'** कहानियों में अतिनाटकीयता

**सरेआम (कहानी संग्रह) : हरीश पाठक**
**प्रकाशक: मध्यप्रदेश साहित्य परिषद, भोपाल, मूल्य: बारह रुपये; प्रथम संस्करण 1981**



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तनावपूर्ण शिल्प और भावुकता ने मिलजुलकर कोई अच्छा प्रभाव नहीं छोड़ा है. इन कहानियों में 'सरेआम' कहानी बहुत अच्छी बन सकती थी.

'दरअसल' कहानी में सुलतान का गायब हो जाना अतिरिक्त नाटकीय हो जाता है.

हरीश पाठक ने यदि कस्बे या छोटे शहर के परिवेश को न छोड़ा और वहां के जीवन में आने वाले परिवर्त्तनों पर आधारित कहानियां लिखते रहे तथा नाटकीयता और भावुकता से बच सके तो निश्चय ही बढ़िया कहानियां दे सकेंगे. □

# आदर्शों की सलीब पर

▣ प्रदीप सक्सेना

धर्मपाल 'अकेला' का यह पहला नाटक है. द्वितीय संशोधित संस्करण!

नाटक पढ़कर लगता है कि इसके मंचन से अधिक पढ़ने के लिए होने की बात काफी हद तक सही है. रंग-संकेतों का काफी अभाव इसे केवल सीधे-सीधे संवादों की प्रस्तुति तक सीमित रखकर पठनीय अधिक बनाता है.

चूंकि इतिहास में काम करना उतना सहज नहीं और विशेष रूप से तब जब लेखक उससे नवीन संदर्भों और व्याख्यानों की संगति बैठाने का काम ले रहा हो.

इस दृष्टि से लेखक की मेहनत और उसकी नीयत दोनों में किसी प्रकार का संदेह नहीं. एक ईमानदार आत्माभिव्यक्ति, धार्मिक पाखंड और कुहरिल अवैज्ञानिक मानसिकता के विरुद्ध एक जीवंत परंपरा की खोज बहुत ही महत्त्वपूर्ण है.

नाटक के एक पात्र यहूदा ने एक जगह बहुत ही कीमती बात कही है—"**किसी भी सामाजिक कार्यकर्त्ता को, जिस समाज का वह उत्थान चाहता है, उसमें उसे सदा उपदेशक की भूमिका ही नहीं करनी चाहिए, समाज से एक भावनात्मक संबंध भी स्थापित करना चाहिए.**" बस, यही बात लेखक से भी अपेक्षित थी. वह उस समाज में संबंध नहीं स्थापित कर सका, जिससे कि उन अंतर्विरोधों को उजागर कर पाता, जो इस सत्य तक पहुंचते.

लेकिन ये कमियां सामाजिक उद्देश्य और कृति के प्रभाव को एकदम मिटा नहीं डालतीं, बस, उसकी ऐतिहासिकता पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं और लेखक से अगली कृतियों में अधिक सावधानी और मेहनत की मांग करती हैं. जिस देश में धर्म की भूमिका केवल शासक वर्ग की सेवा हो, न्यायपालिका तक स्वतंत्र न हो, अंधविश्वास और मजहबी जुनून की लू चलती हो, उसमें ऐसी कृतियों का महत्त्व काफी बढ़ जाता है.

सक्रिय उत्तेजना और सामाजिक चेतना के प्रसार में यह नाटक काफी सफल है और जहां कहीं भी लेखक ने जमकर संवाद रचे हैं वे स्थल बहुत अच्छे बन पड़े हैं. □

▣ **देखो यह पुरुष : धर्मपाल 'अकेला'; प्रकाशक : तिरुपति प्रकाशन, प्रेमपुरा, हापुड़; मूल्य : 18.00 रु**

# भ्रामक जीवन की निहत्थी लड़ाई

▣ राजकुमार गौतम

**'इसी शहर में' की कहानियां निम्नमध्यवर्गीय संस्कारों, विवशताओं और संघर्षों के गुत्थम-गुत्था अंतर्संबंधों के आधार पर रची गयी हैं. लेखक की चेतस दृष्टि जहां स्पष्ट होती है, ठीक वहीं कहानी भी खत्म हो जाती है. इस तकनीक में प्रयुक्त लापरवाही से कई बार यह नुकसान हो जाता है कि अंत सच्चा न लगकर आरोपित लगने लगता है. अंत का यही आकस्मिक उच्चताप प्रायः इन कहानियों की आरंभिक संवेदनधर्मिता को भी सोख लेता है.**

**'बावजूद', 'प्रलाप' तथा 'आवृत्ति : निवृत्ति' थीम की दृष्टि से अच्छी कहानियां हैं. कथाकार की दिलचस्पी इन कहानियों में जाहिर होती है तथा भाषा की सहजता यहां कहानी का विशुद्ध गुण लगती है. इसके विपरीत 'पेशा' में अत्यधिक विश्लेषण या 'वार्ड नंबर टू' में फालतू की संवादधर्मिता कहानी को ऊब व बकवासी रुझान देती हैं. संग्रह की 'अंततः' कहानी अपनी बनावट की अतिनाटकीयता के बावजूद पाठक पर विस्तृत प्रभाव छोड़ने में सक्षम है.**

**संग्रह की शुरू की चार कहानियां : 'इसी शहर में', 'सामना', 'प्रहार' तथा 'अंधेरा' एक लंबी लड़ाई व आतंक के गठजोड़ से बुनी गयी हैं, लेकिन यहां परिवेशगत चित्रण तथा अनावश्यक विषयों पर कथाकार इतना अधिक उलझ गया है कि गर्मागर्म स्थितियों का वैचारिक धरातल पर फायदा उठाने के बजाय, एक अकेले आतंक की ओर संकेत मात्र देकर ही ये कहानियां ठहर जाती हैं. पाठक को पुनर्विचार या रचनात्मक सनसनी की तरफ ये नहीं ले जा पाती हैं. अन्य कहानियों में भी सीमित अनुभव, ठंडा-ठंडा, भाषाई मुहावरा तथा लड़ाई के परिचित व निश्चित फार्मूलों के कारण, पठनीयता तो बन जाती है लेकिन विशिष्टता का अभाव बना रहता है. इसी अभाव के कारण पूरे संग्रह की कहानियों में कथाकार की समझ या कला दक्षता में कोई भी स्पष्ट विकास रेखांकित नहीं किया जा सकता. व्यक्ति और संगठन के बीच पसरा हुआ शुद्धकला युद्ध इन कहानियों में थामा जा सकता है, जिसे विशिष्ट अर्थों में सकारात्मक लेखन माना ही जा सकता है.** □

▣ इसी शहर में : सुरेंद्र तिवारी; प्रकाशक : अभिव्यंजना प्रकाशन, 109/48 पंजाबी बाग, नयी दिल्ली-110026; मूल्य : 20 रुपये



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## नयी पत्रिकाएं

पिछले कुछ वर्षों में जिन साहित्यिक पत्रिकाओं ने अपनी विशिष्ट पहचान बनायी है उनमें **समकालीन भारतीय साहित्य** इस दृष्टि से उल्लेखनीय है कि अपने स्वरूप और प्रस्तुति के कारण यह निश्चित रूप से हिंदी में प्रकाशित होने वाली भारतीय साहित्य की एकमात्र पत्रिका बन गयी है. यूं तो अब तक समकालीन भारतीय साहित्य के सत्रह अंक प्रकाशित हो चुके हैं. . .पर सन् 1984 के (अब तक प्रकाशित) तीन अंकों पर बतौर बानगी नजर डाली जाये तो यह कहा जा सकता है कि हिंदी भाषी पाठकों को विविध भारतीय भाषाओं के श्रेष्ठ समकालीन लेखन से परिचित कराने की दिशा में पत्रिका के संपादक ने महत्वपूर्ण कार्य किया है जो सही अर्थों में एक रचनात्मक पहल है.

**लंबी नज्म-छोटी नज्म** पर **बलराज कोमल** द्वारा प्रस्तुत परिसंवाद में **शम्सुर्रहमान फारुकी, डा. गोपीचंद नारंग, जोगेंद्र पाल** और **बलराज कोमल** ने गंभीरता से चर्चा करते हुए चीजों को समझने की कोशिश की है. और यह सही लगता है कि हर लंबी नज्म का अपना स्वभाव होता है, अपनी अपेक्षा होती है. . .यह अपेक्षा यदि सरप्लसेज के बिना पूरी होती चली जाये तो उसका लंबा होना भी हमें एक तरह से संक्षेप का अहसास दिलाता है. जाहिर है, यहां मैं जोगिंदर पाल से सहमत हूं. साथ ही नारंग साहब की वह बात भी मुझे सही लगती है जहां वे नज्म के दामन को व्यापक बनाते हुए आज के समय की व्यग्रता, दर्द और कशमकश को पेश करने की संभावनाओं की ओर संकेत करते हैं. . .पर जहां वे कहते हैं कि कमर्शियलाइजेशन के इस दौर में मासमीडिया की वजह से जो जबर्दस्त चैलेंज शायरी को दरपेश है वह फिक्शन को नहीं. . .उनसे सहमत नहीं हुआ जा सकता. मुझे लगता है इस तरह के वक्तव्य लंबी नज्मों के रचनाकारों को हतोत्साहित ही करेंगे. . .

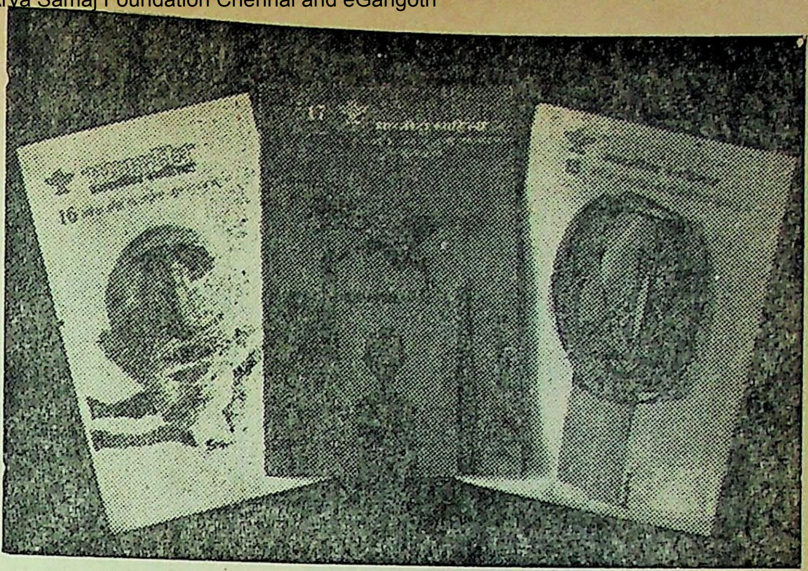

## समकालीन भारतीय साहित्य की रचनात्मक पहल

'अभिनेता' का अर्थ जब गाली माना जाता था. . .तब से, और अब जब नाटक हमारे सांस्कृतिक जीवन का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा बन गये हैं, . . .**विजय तेंदुलकर** लिखित **मेरी नाट्य शिक्षा** एक पठनीय लेख है. जिसमें कई घटनाओं के सहारे तेंदुलकर अपनी बात कहते चलते हैं. आधुनिक असमिया कविता पर **डा. भोलाभाई पटेल**, समकालीन बंगला नाटक की दिशा पर **डा. इंद्रनाथ चौधरी** और डोगरी उपन्यास पर **शिवनाथ** के लेख बहुत कुछ नया देते हैं. समसामयिक साहित्य में अंतर्निहित चिंतन की दिशायें पढ़कर **प्रो. रघुवंश** से जहां इस अर्थ में कोई भी सहमत हो सकता है कि साहित्य की रचनाधर्मिता को किसी व्यवस्थित और निश्चित सिद्धांत के आधार पर व्याख्यायित नहीं किया जा सकता, यह हो सकता है कि उनके सहारे रचना के किसी एक पक्ष को एक सीमा तक समझा जा सके. . .वहीं **परमानंद श्रीवास्तव** की इस बात को भी स्वीकार करना होगा कि सर्वेश्वर की कविता महानता के मिथ को तोड़ती है और साधारणता में ही अपनी सार्थकता प्रमाणित करती है. लेकिन जहां **मधुरेश** निर्मल वर्मा की कहानियों पर लिखते हुये यह कहते हैं कि निर्मल की कहानियां आज भी यदि महत्वपूर्ण हैं तो इसलिए कि उन्हें उनकी अपनी शर्तों पर ही स्वीकार किया जा सकता है. इससे एक रचनाकार के रूप में निर्मल वर्मा की सामर्थ्य का अनुमान भी आसानी से लगाया जा सकता है. मैं समझता हूं कि निर्मल का कथा-संसार अपने पाठकों पर स्वीकृति पाने के लिए न तो कोई शर्त लगाता है न ही यह किसी रचनाकार की सामर्थ्य की पहचान करा सकने वाली कोई महत्वपूर्ण चीज है.

इन तीन अंकों में प्रकाशित कहानियों में **बिट्टू अंकल**, (शैलेश मटियानी) **प्रश्न** (यू. आर. अनंतमूर्ति), **पुनर्जन्म** (बुद्धदेव गुहा), **जूड़े का पिन** (बंसी निर्दोष), अपने-अपने स्तर पर प्रभावित करती हैं. . .पर **शैलेश मटियानी** और **अनंतमूर्ति** की कहानियों का असर काफी समय तक बना रहने वाला है.

**लुटेरे** (विनोद भारद्वाज), **किसके लिए** (स्नेहलता चटोपाध्याय), **सुर बदल रहा है** (सी. नारायण रेड्डी), **बच्चे** (अवधेश कुमार), **बूढ़ा आदमी** (परमानंद श्रीवास्तव), **लड़कियां बारात देखेती हैं** (अब्दुल बिस्मिल्लाह) और **लड़की अभी उदास नहीं है, एक इच्छा लड़की की चूड़ियों में, उदासियां तब कितनी अलग होतीं** (गगन गिल) जैसी कविताएं निश्चय ही पाठकों का वर्तमान भारतीय कविता के वैविध्यपूर्ण रूप से साक्षात कराती हैं, जो ऐसी पत्रिका के अभाव में एक साथ हो पाना बहुत मुश्किल रहता. कई भाषाओं और पीढ़ियों के रचनाकारों की रचनाओं के एक साथ प्रकाशन की स्थिति किसी भी बड़े पाठक समुदाय के लिए स्वागत योग्य है. □


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


**निरोध...**
**जिससे आपको अच्छी तन्दुरुस्ती, स्वास्थ्यलाभ तथा दूसरा बच्चा आने से पहले कुछ समय मिल सके**

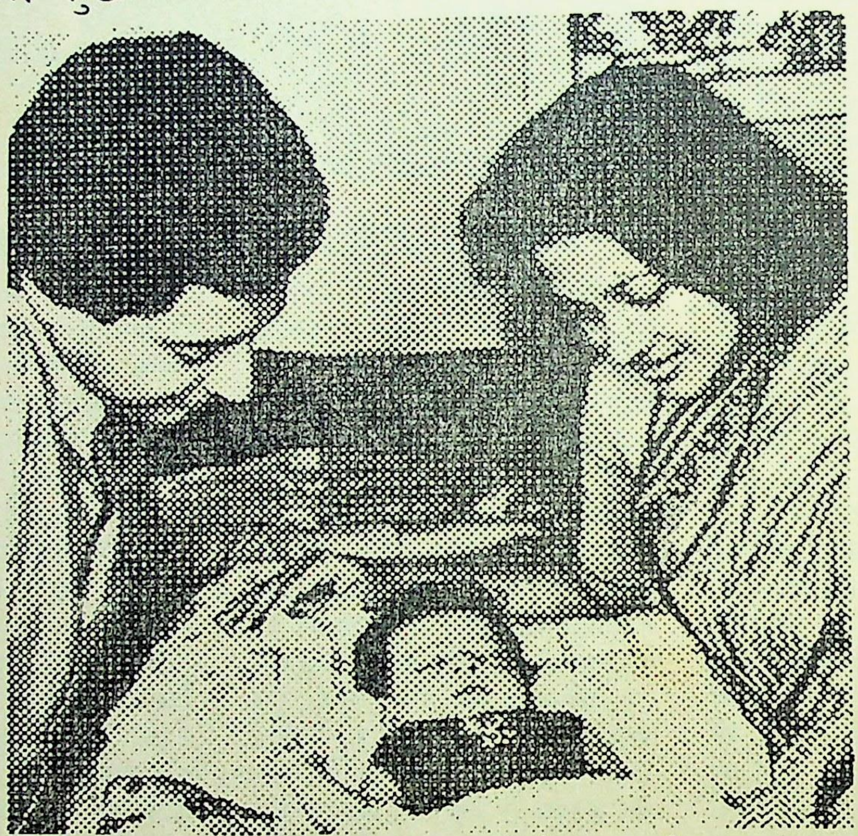

पहले बच्चे के जन्म के बाद दूसरे बच्चे के जन्म के लिए आपको समय का काफी अन्तर रखना चाहिए। और इसमें निरोध आपकी सहायता करता है ताकि आप अगला कदम सोच समझ कर उठा सकें।

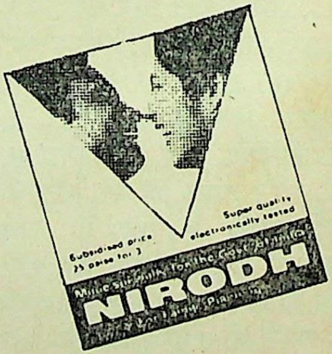


सुखी और निश्चिन्त वैवाहिक
जीवन के लिए–

**निरोध** का प्रयोग कीजिये

वितरक : ब्रुक बॉण्ड, लिपटन, हिन्दुस्तान लीवर, आई.टी.सी., टाटा ऑयल मिल्स, यूनियन कारबाइड, आइंडीपीएल, स्मिथ स्टैनिस्ट्रीट, इण्डियन ऑयल कॉरपोरेशन, भारत पेट्रोलियम, हिन्दुस्तान पेट्रोलियम और आरासन मैच इण्डस्ट्रीज़

davp 84/43




CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## हलचल

# किसानों की तरफ देखने की जरूरत है!

▣ बलराम

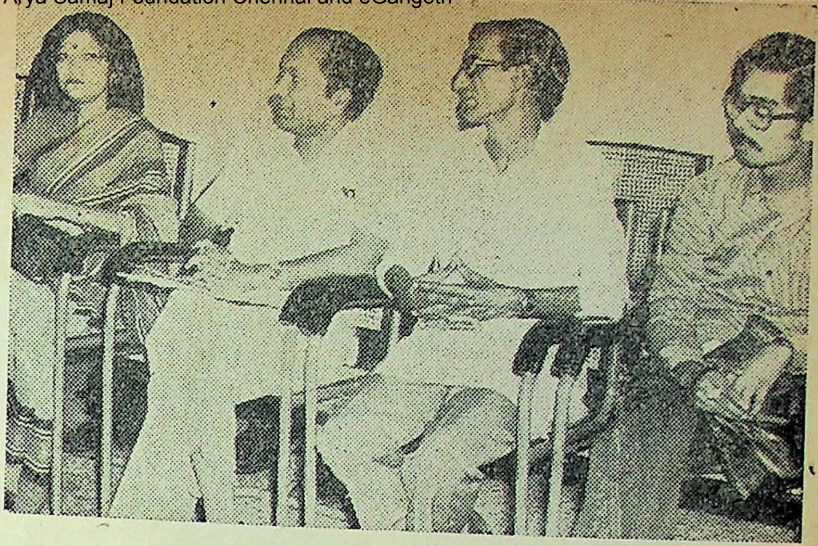

● श्रीमती मृदुला गर्ग, सर्वश्री गिरिराज किशोर, योगेश गुप्त तथा धीरेंद्र अस्थाना

सागर विश्वविद्यालय के पुस्तकालय भवन में पिछले दिनों मध्य प्रदेश साहित्य परिषद की ओर से समकालीन भारतीय उपन्यास के विभिन्न आयामों पर एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें देश के कोने-कोने से आये उपन्यासकारों के अलावा पाठक मंच के सदस्यों ने सक्रिय हिस्सा लिया. पढ़ने-लिखने के प्रति लोगों में रुचि जागृत करने के लिए मध्यप्रदेश के छोटे से छोटे नगर में भी पाठक मंचों की स्थापना के लिए ही नहीं, बल्कि राजधानी भोपाल को छोड़कर दूरदराज इलाकों में साहित्य की अलख जगाने के लिए भी परिषद के सचिव और सुपरिचित कवि श्री सोमदत्त निश्चय ही बधाई के पात्र हैं.

सागर की इस उपन्यास संगोष्ठी में पहले दिन का विषय था—'हिंदी उपन्यास में मनुष्य की छवि'. इस विषय पर लिखे गये अपने आलेख में श्री नित्यानंद तिवारी ने कहा कि "यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि देहाती और किसानी जिंदगी से संबद्ध उपन्यास केवल हिंदी में ही नहीं, भारत की अन्य भाषाओं में भी महाकाव्यात्मक ऊंचाई पा सके हैं. 'मैला आंचल' में मनुष्य का जो बिंब उभरा है, उसकी प्रभूत सर्जनात्मकता दो कारणों से है. पहला यह कि भारतीय समाज के सृजनशील वर्ग को बहुत विश्वसनीय कारणों से वह धारण कर लेता है. सृजनात्मक व्यक्तित्व के उभार की बड़ी सजीव प्रतीति उसमें है. दूसरा यह कि सृजनशील व्यक्ति के बिंब के आह्वान की शक्ति से अधिक उसमें उस बिंब के साथ रचने की मौलिक योग्यता है. कोई भी व्यक्ति स्थानीय हुए बिना सार्वभौम नहीं हो सकता. स्थानीय केंद्र के बिना सार्वभौमिकता चरितार्थ नहीं हो सकती. भारतीय उपन्यास में मनुष्य की छवि के लिए किसानों की तरफ देखने की जरूरत है. 'गोदान' के बाद 'मैला आंचल' में ही भारतीय मनुष्य की छवि उभर पायी है यानी कि हर जगह सही व्यक्ति का पिछड़ जाना."

विजयमोहन सिंह ने अपने पर्चे में कहा कि "उपन्यास में मनुष्य की छवि को उस समाज से अलग करना कठिन है, जिसमें लेखक स्वयं रहता है. अज्ञेय के उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' के साथ विभाजित समाज की नहीं, बल्कि विभाजित व्यक्तित्वों की शुरुआत होती है. कई अर्थों में शेखर आधुनिकतवादी मनुष्य के प्रक्षेपण की शुरूआत है, जहां सबके विरुद्ध होने के साथ-साथ वह अपने भी विरुद्ध है. यह आधुनिक मनुष्य की अक्षमता का प्रमाण है. शेखर आत्मकेंद्रित और अराजकतावादी है. हिंदी के लगभग सारे नायक निष्क्रिय हैं. उपन्यास को महान बनानेवाले तत्त्व उसके मनुष्य होते हैं. गिरिराज किशोर के नायक शिवचरण लाल के मोहभंग की परिणति आत्मघात में होती है, जिसके साथ एक संस्कृति मर जाती है, लेकिन आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का बाणभट्ट बुनियादी सवाल उठाता है और परंपरा में ओजस्वी दृष्टि की तलाश करता है. प्रेमचंद के मनुष्य हार-हारकर सीखते हैं, सीख-सीखकर हारते नहीं. 'कसप' में आत्मचेतना का विभाजन है, जहां नायक ने प्रेम की बजाय सफलता को चुना है. आदमी कुछ नहीं रहता, सफलता सब कुछ हो जाती है, पर 'कसप' का नायक आत्मघाती नहीं है.

अपनी राय जाहिर करते हुए दामोदर सदन ने भारतीय मनुष्य के मिजाज को हिंसक कहा तो पुरुषोत्तम अग्रवाल ने तीसरे मनुष्य को रेखांकित करने पर जोर दिया. रमाकांत ने 'मुरदाघर' में आजादी के बाद की संपूर्ण टूटन को और 'तमस' में आजादी के साथ बंटवारे के हारर को रेखांकित किया. योगेश गुप्त ने आलेख लेखकों पर आरोप लगाया कि वे आज के उपन्यास से परिचित नहीं हैं. कृष्णबलदेव वैद तथा राधावल्लभ त्रिपाठी के अलावा श्रोताओं ने भी अपने विचार रखे.

दूसरे दिन का पहला विषय था, 'समकालीन उपन्यास में राजनीतिबोध.' अपने आलेख में गिरिराज किशोर ने कहा कि "आज के उपन्यास का आधार अगर राजनीति है तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है और न ही यह कोई गलत बात है. इसका उपन्यास के क्षेत्र में एक रचनात्मक योगदान है. गोदान, शेखर: एक जीवनी, झूठा-सच, त्यागपत्र, मैला आंचल, उखड़े हुए लोग, आधा गांव, रागदरबारी, जिंदगीनामा, काला जल, तमस, मुरदा घर, लेकिन दरवाजा की अपनी एक राजनीतिक संवेदना है. उपलब्धि का पथ राजनीति का पथ है. यथार्थवादी समाज राजनीत विहीन नहीं हो सकता, तब


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## कहानी आत्मपरकता से वस्तुपरकता की ओर जा रही है!

. . . पृष्ठ 46 से जारी

भी नहीं हो सकता, पर हालत इतनी निराशाजनक भी नहीं है. इस बीच कहानी की चर्चा लघु-पत्रिकाओं में लगातार होती रही है और अच्छी कहानियां बराबर रेखांकित हुई हैं.

**भीष्म साहनी :** नामवरजी इस समय हमारे बीच मौजूद नहीं हैं और मैं नहीं जानता कि इस संबंध में उन्हें क्या कहना है. उन्हें ही लक्ष्य करके बात कही जाये, मुझे सही नहीं लगता, पर जहां तक लेखक और आलोचक के रिश्ते का सवाल है, मैं आलोचक के महत्व से इनकार नहीं करता, लेकिन इतना अधिक महत्व मैं आलोचक को नहीं देता कि उसी की ओर देखता रहूं कि वह मेरी प्रशंसा करता है या नहीं. पाठक के साथ रिश्ता बनाने को मैं तरजीह देता हूं, भले ही मेरा रिश्ता आलोचक के साथ बने या न बने, लेकिन यह समस्या किसी न किसी रूप में बनी रहती है. कुछ लेखकों को आलोचकों ने पढ़ा नहीं, सराहा नहीं, और वे हतोत्साह हुए. आलोचक का फर्ज होता है कि वह पढ़े और सुझाये भी. किसी भी कारण से आलोचक अगर लेखक की उपेक्षा करता है तो यह ईमानदारी नहीं है, क्योंकि आलोचक पूर्वग्रह के साथ चीजों को पढ़े, यह अपेक्षा हम उससे नहीं करते.

**कर्णसिंह चौहान :** भीष्मजी ने बहुत अच्छी बात कह दी है. किसी भी बड़े लेखक ने, जिसने अपने साहित्य का निर्णायक व्यापक जनता को माना है, कभी आलोचक की ज्यादा परवाह नहीं की है. फिर भी आलोचना का महत्व सभी स्वीकार करते हैं, क्योंकि अगर वह अच्छी आलोचना है तो लेखक और पाठक दोनों की मदद करती है और यही उसका काम है.

**नमिता सिंह :** आपने तो उपसंहार-सा कर दिया. . .(सबकी हंसी) लेकिन चलते-चलते मैं एक बात और कहना चाहूंगी कि कुछ आलोचक पुरुष-लेखकों और महिला-लेखकों में फर्क करते हैं. मेरा खयाल है कि यह प्रवृत्ति बहुत गलत है. **मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, नासिरा शर्मा, मृणाल पांडे, चित्रा मुद्गल** या और लेखिकाएं महिला होने के नाते पुरुष लेखकों से भिन्न हैं या इनकी कहानियों की समीक्षा करते हुए यह भाव रखना कि चलो भई, अपने सीमित दायरे में रहकर इन्होंने इतना कर लिया तो यह भी बहुत है, बड़ी गलत बात है. यह एक तरह से हम लोगों को नीचा दिखाने की या नीचे खींचने की कोशिश है. कोई महिला अगर महत्वपूर्ण कथाकार है तो अपनी रचना के बल पर है, किसी आलोचक की दया के बल पर नहीं. और महिला कथाकारों के अनुभव-संसार के सीमित होने की बात भी गलत है.

**कर्णसिंह चौहान :** दरअसल जब यथार्थवादी साहित्य का माहौल बनने लगता है और साहित्य में जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्न उठाये जाने लगते हैं, तब चीजों को पटरी से उतार देने के प्रयास कुछ लोग करते ही हैं. ऐसे लोगों का प्रयास यह होता है कि चर्चा गंभीर मुद्दों से हटकर फालतू बातों पर होने लगे. महिलाओं और पुरुषों के लेखन में भेद करना भी ऐसी ही एक फालतू बात है, जिसका कोई महत्व नहीं.

**भीष्म साहनी :** पढ़नेवाले को क्या फर्क पड़ता है कि यह कहानी महिला ने लिखी है या पुरुष ने लिखी है? वह तो अच्छा साहित्य चाहता है, लेकिन महिला लेखकों का साहित्य में प्रवेश एक स्वागत योग्य चीज है. इससे उन्होंने अपने दायरे को और विस्तृत किया है. संस्कृति के क्षेत्र में उनकी सक्रियता उत्साहवर्द्धक-सी बात है.

**रमेश उपाध्याय :** निश्चय ही हमारे देश में महिलाओं की जो स्थिति है, उसमें किसी महिला का लेखन के क्षेत्र में आ जाना ही बड़ी बात है, लेकिन आलोचना या मूल्यांकन में इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए कि यह कहानी महिला लेखक की है या पुरुष लेखक की. □

**▣ प्रस्तुति : रमेश उपाध्याय**

**▣ छायांकन : पवन महेंद्र**

---

राजनीति के बिना उपन्यास कैसे हो सकता है." आलेख में पुरुषोत्तम अग्रवाल ने कहा कि "भारत के विभाजन सरीखी भीषण दुर्घटना पर कोई ऐसा उपन्यास नहीं लिखा गया, जो इस घटना से उत्पन्न हुए सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक विक्षोभ के परिप्रेक्ष्य में हमारे जातीय जीवन में आये गहरे बदलाव का विश्लेषण करता हो."

अपनी राय जाहिर करते हुए जगदंबाप्रसाद दीक्षित ने कहा कि "उपन्यास के फार्म की कुछ सीमाएं हैं. अपनी राजनीतिक समझ व्यक्त करने के लिए अपनी रचनाओं में तोल्स्तोय और प्रेमचंद आदि लेखक कुछ पात्र रचते हैं, जो उपन्यास के फार्म को डिस्टर्ब करते हैं. संरचना के साथ विश्लेषण कैसे चल सकता है, आलेख लेखक अगर यह बता सकें तो लेखकों का भला होगा."

कृष्ण बलदेव वैद ने 'महाभोज' को फ्लैट उपन्यास की संज्ञा दी. रमाकांत ने महाश्वेता देवी को अमहत्त्वपूर्ण कहा तो योगेश गुप्त ने उन्हें आज का बहुत महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार माना. जगदीश चंद्र, पंकज बिष्ट तथा धीरेंद्र अस्थाना भी बोले.

संगोष्ठी का अंतिम और तीसरा विषय था–'हिंदी में भारतीय उपन्यास: रूप की तलाश.' अपने आलेख में जगदंबाप्रसाद दीक्षित ने कहा कि "पद्य को उपदस्थ कर गद्य को प्रमुख बनाने में औद्योगीकरण का बड़ा हाथ है. पुराना लीजेंड रूपांतरित होकर उपन्यास हो गया. इसके पीछे पश्चिम की सामाजिक क्रांति है, जिसने हमारे सारे मूल्य ही बदल दिये. वर्तमान उपन्यास का रूप हमें पश्चिम से मिला है."

अपने आलेख में मृदुला गर्ग ने कहा, "हमारे आजके समाज पर पश्चिम की यांत्रिकता, मूल्यहीनता और खंडित होते व्यक्ति का प्रभाव है, जो हमारे उपन्यास के रूप पर भी है." □



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ नैनम् छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनम् दहति पावकः
न चैनम् क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः ॥

एक महान भारतीय आत्मा, एक संवेदनशील और
दृढ़ व्यक्तित्व और देश तथा तीसरी दुनिया की
अप्रतिम नेता श्रीमती इंदिरा गांधी
को
समस्त सारिका परिवार की हार्दिक श्रद्धांजलि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar